नैतिक कथाएं

यशपाल जैन

नैतिक कथाएं

जीवन में उदात्त विचार और उत्तम कर्म
की प्रेरणा देनेवाली बोध-कथाएं

•

यशपाल जैन

•

२००१

सस्ता साहित्य मण्डल

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

●

पांचवीं बार : २००१
प्रतियाँ : १,०००
मूल्य : रु. ३०.००

●

मुद्रक
आई.बी.एच. प्रिन्टर्स
दिल्ली-११००३२

बाबा मुक्तानन्द परमहंस को

जिन्होंने

मानव की सुप्त चेतना को जाग्रत करने

के लिए अथक साधना की ।

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

'मण्डल' का सदा प्रयत्न रहा है कि वह पाठकों को ऐसी पुस्तकें सुलभ करे, जो उनके विचारों को परिष्कृत करें और उन्हें सत्कर्म करने की प्रेरणा दें। अपनी स्थापना से लेकर अबतक के वर्षों में उसने दो हजार से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उनके पीछे यही ध्येय रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी इसी उद्देश्य से किया गया है। इसमें छोटी-छोटी १३७ कथाएं हैं। ये कथाएं मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनने के लिए प्रेरित करती हैं। प्रत्येक कथा का आकार लघु है, किंतु एक भी कथा ऐसी नहीं है, जिसमें कोई-न-कोई शिक्षा निहित न हो।

पुस्तक सबके लिए उपयोगी है। हर आदमी चाहता है कि उसके विचार उदात्त हों और उसके हाथों बराबर अच्छे-अच्छे काम होते रहें। यह पुस्तक इस दिशा में विशेष सहायता पहुंचाती है।

सभी कथाएं सरल और सुबोध हैं। रोचक तो इतनी हैं कि पाठक एक बार पुस्तक को हाथ में ले लेने पर बिना समाप्त किये छोड़ नहीं सकते।

चरित्र-निर्माण की समस्या हमारे देश में सदा से रही है, आज भी है और आगे भी रहेगी। इस दृष्टि से इस पुस्तक का सार्वजनीन और सार्वकालिक मूल्य है।

हमें पूरा विश्वास है कि इस पुस्तक का प्रत्येक परिवार में समावेश होगा और जो भी इसे पढ़ेंगे, उन्हें लाभ ही होगा।

—मंत्री

दो शब्द

प्रस्तुत संग्रह की कथाओं के विषय में मेरा कुछ कहना अनावश्यक है। अपनी बात ये कथाएं स्वयं कहती हैं। फिर भी मैं इतना अवश्य कह देना चाहता हूं कि इन कथाओं के लिखने में मुझे न केवल संतोष हुआ है, अपितु अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति भी हुई है।

इसका कारण है।

जबसे मैंने होश संभाला है, मेरी मान्यता रही है कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा और सबसे ऊंचा ध्येय अच्छा मनुष्य बनना है। इसी मान्यता का मैंने अपनी वाणी और लेखनी से निरंतर प्रतिपादन किया है।

इस दिशा में बोध-कथाओं का योगदान अद्वितीय है। जिस बात को कहने के लिए बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना की जाती है, उसी बात को ये कथाएं बहुत थोड़े में, सहज ही, कह देती हैं। सच तो यह है कि बोध-कथाओं में जीवन के ज्ञान और अनुभव का सार निहित होता है। उन्हें आचरण में ढाला जाय तो वे जीवन का कायाकल्प कर देती हैं।

इसी से बोध-कथाओं का महत्त्व पुरातन काल से चला आ रहा है। हमारे धर्म तथा नीति के ग्रंथ इन कथाओं से भरे पड़े हैं। इनके ग्रंथकार जब कभी किसी गूढ़ तत्त्व का निरूपण करते थे तो उसे सामान्य पाठकों के गले उतारने के लिए छोटी-छोटी कथाओं का सहारा लिया करते थे। चूंकि उन कथाओं में सनातन तत्त्वों का समावेश होता था, वे कभी पुरानी नहीं पड़ीं। यद्यपि आज युग बदल गया है, लोगों की मान्यताओं में परिवर्तन हो गया है, फिर भी लोक-कथाओं की लोकप्रियता में कोई अंतर नहीं आया है। कह सकते हैं कि आज जबकि मनुष्य अपने ध्येय से प्रायः भटक जाता है, ये कथाएं और भी उपादेय हो गयी हैं, क्योंकि ये भटकते इंसान को सही रास्ता बताती हैं और उस ओर चलने को प्रेरित करती हैं। भविष्य में इन लोक-कथाओं की लोकप्रियता और भी बढ़ने की संभावना है, क्योंकि मानव का जीवन आज

इतना व्यस्त हो गया है कि मोटे-मोटे ग्रंथ पढ़ने का समय बहुत थोड़े लोगों के पास रह गया है। बोध-कथाएं अधिक समय नहीं लेतीं और जीवन को स्फुरित करने के लिए बहुत-कुछ दे देती हैं।

पाठक स्वयं देखेंगे कि इस संग्रह की कथाएं कितनी सरस और रोचक हैं। पढ़ने में वे अच्छी लगती हैं और अंत में कुछ-न-कुछ सोचने और सीखने का अवसर देती हैं। बच्चे और बड़े, स्त्रियां और पुरुष, सभी के लिए ये समान रूप से रुचिकर तथा उद्‌बोधक हैं।

पुस्तक की कुछ कथाएं मेरे अपने मन की उपज हैं। कुछ सुनी हुई हैं और कुछ को मैंने यहां-वहां पढ़ा है। उनमें कुछ कथाएं 'धर्मयुग', 'जीवन साहित्य' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने बड़े उत्साह से प्रकाशित की हैं। मुझे हर्ष है कि ये अब एक ही स्थान पर पाठकों को सुलभ हो रही हैं।

इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना। पाठक स्वयं पुस्तक पढ़ें और देखें कि यह उनके मर्म को कितना स्पर्श करती हैं।

—यशपाल जैन

७/८, दरियागंज
नयी दिल्ली-११०००२

अनुक्रम

□

नैतिक कथाएं

१/ विचारों की महिमा

एक कल्पवृक्ष था। उसके नीचे बैठकर आदमी के मन में जो बात आती, वह झट पूरी हो जाती।

एक दिन एक आदमी उसके नीचे आकर बैठा। उसे बड़े जोर की प्यास लगी थी। उसके मन में आया कि अगर यहां पीने का ठण्डा पानी मिल जाता, तो बड़ा अच्छा होता। विचार आने की देर थी कि एक घड़ा ठण्डा पानी आ गया। उस आदमी ने जी भरकर पानी पी लिया।

थोड़ी देर में उसे भूख लगी। उसने सोचा कि अगर यहां खाना भी मिल जाने पर बड़ा अच्छा होगा।

इतना सोचते ही भोजन से भरी थाली आ गयी। उस आदमी ने डटकर भोजन किया। पेट तनकर भर गया, तो उसे आलस आने लगा। वह सोचने लगा कि अगर यहाँ सोने का कुछ प्रबन्ध हो जाय, तो वह थोड़ी नींद ले ले।

तत्काल एक पलंग आ गया। वह उस पर लेट गया।

अचानक एक नया विचार उसके मन में उठा—यह सुनसान जगह है। अगर कोई भूत आ गया, तो मुझे खा जायगा।

इतना सोचता था कि भूत आ गया और उसे खा गया।

विचारों की बड़ी महिमा है। हमें चाहिए कि अच्छे विचार ही मन में आने दें। □

२/ आनन्द का स्रोत

एक नगर था। उसमें हर घर में दुःख था। किसी के बच्चे न होने से हैरानी थी, किसी के अधिक बच्चे होने से; कोई काम के मारे हैरान था, तो किसी के पास काम ही नहीं था; किसी के पास धन का बाहुल्य था, और किसी के धन का अभाव-ही-अभाव था। कहने का मतलब यह कि हर घर में परेशानी थी।

एक दिन अचानक आकाशवाणी हुई कि नगर के निकट अमुक स्थान पर सुख का ढेर लगा है। लोग अपने दुःख की गठरी ले जायं, उसे वहां पटक आएं और सुख की गठरी बाँध लाएं। लोगों को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने अपने दुःख को गठरी में बांधा और चल दिये।

अकस्मात् वे देखते क्या हैं कि नगर के छोर पर बैठा एक साधु आनन्द-विभोर हो खिलखिलाकर हंस रहा है। उन्होंने कहा "महाराज, बड़ा अच्छा अवसर है। कोई दुःख हो तो दूर कर लीजिए।"

साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया। पहले की भांति हंसता रहा। लोग अपना-अपना दुःख पटक आये। सारे नगर में सुख-ही-सुख हो गया।

कुछ दिन बीतते-बीतते एक व्यक्ति ने देखा कि उसकी जेब खाली है, जबकि पड़ोसी की तिजोरी भरी है—इस विचार के उदय होते ही दुःख फिर लौट आया।

लेकिन लोगों ने देखा कि नगर के छोर पर बैठा साधु यथा-पूर्व आनन्दित था। उन्होंने कहा, "महाराज, यह क्या बात है कि जब दुःख था तब आप हंस रहे थे, जब सुख आ गया तब आप

हंसते रहे और अब जब दुःख फिर आ गया है तब भी आप हंस रहे हैं।"

साधु ने कहा, "बात यह है कि तुम लोग मूर्ख हो जो सुख को बाहर खोजते हो। सुख बाहर नहीं, अन्दर है।"

अब लोगों ने समझा कि आनन्द का स्रोत कहां है। □

३/ त्याग का आदर्श

किसी बियाबान जंगल में एक साधु रहता था। छोटी-सी उसकी कुटिया थी। कन्द-मूल-फल खाकर वह दिन-रात ईश्वर के ध्यान में लीन रहता था।

एक दिन आधी रात के समय किसी ने कुटिया का दरवाज़ा खटखटाया। साधु ने उठकर दरवाजा खोला। देखता क्या है कि एक आदमी खड़ा है। पानी में सरोबार, जाड़े से थर-थर कांप रहा है। बड़ी कठिनाई से बोला, "महाराज, जोर से बारिश हो रही है। चारों ओर अंधेरा फैला है। मैं रास्ता भूल गया हूं। बड़ी कृपा होगी, अगर आप मुझे रात को अपनी कुटिया में ही रह लेने दें! मैं सवेरे चला जाऊंगा।"

साधु ने बड़े प्यार से कहा, "इसमें पूछने की क्या बात है! भाई, मेरी कुटिया में एक आदमी सो सकता है, पर दो आदमी बैठ सकते हैं। आओ, अन्दर आओ। हम बैठकर रात गुज़ार लेंगे।"

वे दोनों भीतर गये और आग के सहारे बैठ कर बातें करने लगे। थोड़ी देर में दरवाज़े पर फिर खटखट हुई। साधु ने द्वार

बोला। एक आदमी खड़ा था। पहले आदमी की तरह पानी से तरबतर और कांपता। साधु को देखकर बोला, "मैं भटकते-भटकते हैरान हो गया हूं। रास्ता नहीं मिलता। क्या आज की रात आपकी कुटिया में बिता सकता हूं? दया कीजिए।"

साधु ने ममता भरी आवाज़ में कहा, "भैया, यह कुटिया मेरी नहीं, तुम सबकी है। इस कुटिया में इतनी जगह है कि एक आदमी लेट सकता है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े हो सकते हैं। तुम अन्दर आ जाओ। तीनों खड़े होकर मौज से बातें करेंगे।"

इतना कहकर उसने बड़ी आत्मीयता से उस आदमी को अन्दर कर लिया।

कहते हैं, यह कोई कथा मात्र नहीं है। एक समय था, जबकि हमारे देश में दूसरों के लिए लोग बड़े-से-बड़ा त्याग करने को तैयार रहते थे। □

४/ सेवा और श्रम की महिमा

एक बार गुरु गोविन्दसिंह कहीं धर्म-चर्चा कर रहे थे। शिष्य उनकी धारा-प्रवाह वाणी को मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे। चर्चा समाप्त होने पर गुरु गोविन्दसिंह को प्यास लगी। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "कोई पवित्र हाथों से मेरे लिए पानी ले आवे।"

एक शिष्य दौड़ा हुआ गया और तत्काल चाँदी के गिलास में निर्मल जल ले आया। गिलास को गुरु गोविन्दसिंह की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "लीजिए गुरुदेव!"

गुरु गोविन्दसिंह ने गिलास हाथ में लेते हुए शिष्य की हथेली की ओर देखा। बोले, "वत्स, तुम्हारे हाथ तो बड़े कोमल हैं।"

गुरु के इस वचन को प्रशंसा मानकर शिष्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। गर्व से बोला "गुरुदेव, मेरे हाथ इसलिए कोमल हैं कि मुझे कोई श्रम नहीं करना पड़ता। मेरे यहां बहुत-से नौकर-चाकर हैं। उनसे जो कहता हूं, फौरन कर देते हैं।"

गुरु गोविन्दसिंह गिलास को अपने होंठों से लगाने ही वाले थे कि उनका हाथ रुक गया। बड़े गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा, "वत्स, जिस हाथ ने कभी कोई सेवा नहीं की, कभी कोई काम नहीं किया, मजूरी से जो मज़बूत नहीं हुआ और जिसकी हथेली में मेहनत करने से गांठ नहीं पड़ी, उस हाथ को पवित्र कैसे कहा जा सकता है?"

वह कुछ रुके, फिर बोले, "पवित्रता तो सेवा और श्रम से प्राप्त होती है। क्षमा करना वत्स, मैं तुम्हारे हाथ का पानी नहीं पी सकता।"

इतना कहकर गुरु गोविन्दसिंह ने पानी का गिलास नीचे रख दिया। □

५/ चोट कहां लगनी चाहिए

एक सेठ के पास बहुत बड़ी मिल थी। उससे बहुत-से लोगों की जीविका चलती थी। लाखों की उनकी आमदनी थी।

एक दिन अचानक वह मिल बन्द हो गई। किसी मशीन में कोई खराबी हो गई। काम रुक गया। लोग इधर-उधर भाग-

दौड़ करने लगे। बहुतों ने अपने दिमाग लगाये, लेकिन मशीन चालू नहीं हुई।

इतने में एक आदमी आया। उसने मशीन को ध्यान से देखा। बोला, "सेठजी, मैं आपकी मशीन को ठीक कर दूंगा। यह फौरन चालू हो जायगी, लेकिन आपको इसके लिए दस हजार रुपये देने होंगे।"

सेठ द्विविधा में पड़ा, पर उसने सोचा कि मशीन दो दिन भी नहीं चली तो भारी नुकसान हो जायगा। बाजार बिगड़ेगा सो अलग। यह सोचकर उसने कहा "ठीक है। मैं तुम्हें दस हजार रुपये दूंगा। तुम मशीन को चालू कर दो।"

इसके बाद उस आदमी ने हथौड़ा लिया और एक खास जगह पर कसकर मारा। हथौड़े का लगना था कि मशीन धड़-धड़ करके चल पड़ी।

सेठ ने यह देखा तो बोला, "अरे भाई, इसमें तो कुछ भी काम नहीं था। तुम दस हजार रुपये किस बात के मांगते हो?"

उस आदमी ने कहा, "सेठ साहब, हथौड़े की चोट तो कोई भी मार सकता था; पर कितने लोग हैं, जो यह जानते हैं कि चोट कहाँ मारनी चाहिए?"

सेट निरुत्तर हो गया। उसने उसे दस हजार रुपये दे दिये। □

६/ "भागो मत!"

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शरीर-त्याग के बाद उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द तीर्थयात्रा के लिए निकले। कई तीर्थों

के दर्शन करते हुए वह काशी आये और विश्वनाथ के मन्दिर में पहुंचे। अच्छी तरह से दर्शन करके बाहर आए, तो क्या देखते है, कुछ बन्दर इधर-से-उधर चक्कर लगा रहे हैं। स्वामीजी जैसे ही आगे बढ़े कि बन्दर उनके पीछे पड़ गये। उन दिनों स्वामीजी लम्बा अंगरखा पहना करते थे और सिर पर साफ़ा बाँधते थे। विद्या प्रेमी होने के कारण उनकी जेबें पुस्तकों तथा कागजों से भरी रहती थीं। बन्दरों को भ्रम हुआ कि उनकी जेबों में खाने की चीजें हैं।

अपने पीछे बन्दरों को आते देखकर स्वामीजी डर गये और तेज चलने लगे। बन्दर भी तेजी से पीछा करने लगे। स्वामीजी ने दौड़ना आरम्भ किया। बन्दर भी दौड़ने लगे।

स्वामीजी अब क्या करें ? बन्दर उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे। स्वामी का बदन थर-थर कापने लगा। वह पसीसे से नहा गये। लोग तमाशा देख रहे थे, पर कोई भी उनकी सहायता नहीं कर रहा था।

तभी एक ओर से बड़े जोर की आवाज आई, "भागो मत !"

ज्योंही ये शब्द स्वामीजी के कानों में पड़े, उन्हें बोध हुआ कि विपत्ति से डरकर जब हम भागते हैं तो वह और तेजी से पीछा करती है। अगर हिम्मत से उसका सामना करें तो वह मुंह छिपा कर भाग जाती है।

फिर क्या था ! स्वामीजी निर्भीकता से खड़े हो गये। बन्दर भी खड़े हो गये और थोड़ी देर, खड़े रहकर वे लौट गये।

उस दिन से स्वामीजी के जीवन में नया मोड़ आ गया। उन्होंने समाज में जहां कहीं बुराई देखी, उससे कतराये नहीं, हौसले से उसका मुक़ाबला किया। □

७/ सबसे बड़ा धनी

एक आदमी को बहुत ही दीन और हैरान देखकर दूसरे ने पूछा, "क्यों भाई क्या बात है ?"

वह बोला, "मैं बहुत ही गरीब हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

"कुछ भी नहीं है !" दूसरे ने अचरज से पूछा, "तुम सच नहीं बोल रहे हो।"

"नहीं मैं आपसे ठीक कहता हूं।"

"अच्छा तो तुम एक काम करो," दूसरे ने कहा—"तुम्हारे पास दो कान हैं। एक काटकर मुझे दे दो, मैं इसके बदले तुम्हें एक हजार रुपये दूंगा।"

"नहीं, मैं अपना कान नहीं दे सकता।"

"तो अपनी दो आखों से से एक आंख दे दो—यह लो पांच हजार रुपये !"

"नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"अच्छा तो एक हाथ ही दे दो, यह लो दस हजार रुपये।"

"जी नहीं। यह नहीं हो सकता।"

तब दूसरे ने कहा, "फिर तुम कैसे कहते हो कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है ? तुम्हारे पास एक-दूने दो, यानी दो हजार रुपये से ज्यादा के कान हैं; पांच दूने दस, दस हजार से ज्यादा की आँखे हैं; और दस-दूने बीस, बीस हज़ार से ज्यादा के हाथ हैं। जब कान, आँख और हाथ का इतना मूल्य है तो पूरे शरीर का जाने कितना होगा।"

पहला चुप !

दूसरे ने कहा, "देखो, तुम्हारे पास कितनी बड़ी दौलत है। जिसके पास अच्छी-अच्छी बातें सुनने के लिए कान हों, अच्छी-अच्छी चीजें देखने के लिए आंखें हों, अच्छे-अच्छे काम करने के लिए हाथ हों, उससे बढ़कर धनी और कौन हो सकता है!" □

८/ बुराई को जड़ काटो !

किसी नगर में एक आदमी रहता था। उसके आँगन में एक पौधा उग आया। कुछ दिनों बाद वह बड़ा हो गया और उस पर फल लगे।

एक दिन एक फल पककर नीचे गिरा। उसे एक कुत्ते ने मुँह में ले लिया। देखते-देखते कुत्ते के प्राण निकल गये। आदमी ने सोचा, होगी कोई बात। उसका ध्यान फल की ओर नहीं गया। कुछ समय बाद पड़ोसी का लड़का आया, बढ़िया फल देखकर उसका मन ललचाया। उसने एक फल तोड़ा और जैसे ही दांत से काटा कि उसका दम टूट गया।

अब आदमी ने समझा कि वह विष-वृक्ष है। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने कुल्हाड़ी ली और वृक्ष के सारे फल काट-काटकर गिरा दिये।

लेकिन थोड़े दिन बाद फिर फल लग आये और पहले से भी [illegible]। उसने फिर कुल्हाड़ी उठाई और एक-एक शाख को काट [illegible]। न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी! उसने चैन की सांस ली।

परन्तु कुछ ही दिन बाद सारा पेड़ फिर लहलहा उठा और [illegible] लद गया। आदमी ने सिर पकड़ लिया। अब वह क्या [illegible]? [illegible] पड़ोसी ने उसकी यह हालत देखी, तो उसके पास

आया। बोला, "क्यों, क्या बात है ? इतने हैरान क्यों हो ?"

आदमी ने सारा हाल कह सुनाया। सुनकर पड़ोसी ने कहा "तुम बड़े भोले हो। तुमने फल तोड़े, शाखें काटीं, पर यह नहीं सोचा कि जबतक जड़ रहेगी, पेड़ रहेगा और फल आते रहेंगे। अगर तुम चाहते हो कि इस वला से छुटकारा मिले तो इसकी जड़ को काटो।"

उस आदमी को बोध हुआ। तब उसने समझा कि बुराई की ऊपरी काट-छांट से वह नहीं मिटती, उसकी जड़ काटनी चाहिए।

उसने कुल्हाड़ी लेकर पेड़ की जड़ को काट दिया और हमेशा के लिए चिन्ता से मुक्त हो गया। □

६/ सत्य की जीत

किसी जमाने में एक राजा था। बड़ा नेक था। अपनी प्रजा की भलाई के लिए बराबर प्रयत्न करता रहता था। उसने अपने राज्य में घोषणा करा दी थी कि शाम तक बाजार में किसी की चीज़ न बिके, तो वह स्वयं उसे खरीद लेगा। इसलिए जो भी चीज बच जाती, वह उसे खरीद लेता।

संयोग से एक दिन बाज़ार में एक आदमी शनि की मूर्ति बेचने आया। शनि की मूर्ति को भला अपने घर में कौन रखता ? किसी ने उसे नहीं खरीदा। अपने वचन के अनुसार शाम को राजा ने उसे खरीद लिया और अपने महल में रख दिया।

रात हुई। राजा की आँख लगी ही थी कि अचानक उसके सामने एक मूर्ति आ खड़ी हुई। राजा ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

वह बोली, "राजन्, मैं लक्ष्मी हूं। तुम्हारे राज्य से जा रही हूं। तुमने शनि को अपने यहां जगह दे दी है।"

राजा ने कहा, "मैंने अपने धर्म का पालन किया है । सत्य की रक्षा की है। तुम जाना ही चाहती हो तो चली जाओ।"

उसके जाने के थोड़ी ही देर बाद एक दूसरी मूर्ति आयी । राजा ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

वह बोली, "मैं धर्म हूं। मैं भी जा रहा हूं। जहां शनि रहता है, वहाँ मैं नहीं रह सकता।"

राजा ने वही उत्तर दिया जो लक्ष्मी को दिया था।

फिर तीसरी मूर्ति आयी । राजा ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

उत्तर मिला "मैं सत्य हूं। तुमने शनि को आश्रय दिया है । मैं जा रहा हूं।"

राजा ने उसे पकड़ लिया । बोला, "मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। तुम्हारे लिए ही तो मैंने लक्ष्मी को छोड़ा, 'धर्म को छोड़ा अतः तुम नहीं जा सकते।"

यह सुनकर सत्य चुप हो गया। वह नहीं गया। उसके रुकने पर लक्ष्मी और धर्म लौट आये। □

१०/ सच्ची सम्पदा

एक सेठ था। उसके पास बड़ी सम्पत्ति थी। वह बहुत ही सन्तुष्ट था। अचानक एक दिन उसने हिसाब लगाया तो पता चला कि वह सम्पत्ति उसके और उसके बच्चों के लिए ही काफी होगी, लेकिन बच्चों के बच्चों का क्या होगा ? इस विचार के आते ही सेठ भारी चिन्ता में पड़ गया।

संयोग से उन्हीं दिनों एक महातमा उस नगर में आया, जो सबकी इच्छा पूरी कर देता था। सेठ उसके पास पहुंचा और कहा, "महाराज, मुझे इतनी सम्पत्ति चाहिए कि मैं भोगूं, मेरे

बच्चे भोगें, उनके बच्चे भोगें, कभी खत्म न हो।"

महाराज ने कहा, "ऐसा ही होगा। तुम्हारे घर के पास टूटी-फूटी झोंपड़ी में सास-बहू रहती हैं। कल उनको एक दिन के खाने जितना सीधा दे आना। बस, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी।"

सेठ की खुशी का ठिकाना न रहा। उसकी रात बड़ी मुश्किल से कटी। दिन निकलते ही वह सीधा लेकर झोंपड़ी पर पहुंचा। देखा, सास ध्यान में लगी है, बहू झोंपड़ी की सफाई कर रही है।

सेठ ने बहू से कहा, "यह लो, तुम्हारे लिए दाल, आटा, घी, नमक लाया हूं।"

बहू ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। बोली, "हमें नहीं चाहिए, हमारे पास आज के खाने के लिए है।"

"तो क्या हुआ !" सेठ ने कहा, "कल काम आ जायगा।"

बहू बोली, "हम अगले दिन के लिए संग्रह नहीं करते। भगवान् हमें रोज देता है।"

सेठ अवाक् रह गया। सोचा, "एक ओर ये लोग हैं, जो कल की चिन्ता नहीं करते और दूसरी ओर मैं हूं, जो बच्चों के बच्चों की चिन्ता में मरा जा रहा हूं।"

उसकी आंखें खुल गईं। उसने फिर धन की लालसा नहीं की। □

११/ अलौकिक आनन्द

एक राजा थे। वह बड़े उदार थे। दानी तो इतने कि खाने-पीने की जो भी चीजें होतीं, अक्सर भूखों को बांट देते और स्वयं पानी पीकर रह जाते।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि उन्हें कई दिन तक भोजन न मिला। उसके बाद मिला तो थाल भरकर मिला। उसमें से भूखों को बांटकर जो बचा, उसे राजा खाने को बैठे कि एक ब्राह्मण आ गया।

बोला, "महाराज, मुझे कुछ दीजिये।"

राजा ने थाल में से थोड़ी-थोड़ी चीजें उठाकर उसे दे दीं। फिर जैसे ही खाने को हुए कि एक शूद्र आ गया। राजा ने खुशी-खुशी उसे भी कुछ दे दिया। उसके जाते ही एक चाण्डाल आ गया। राजा ने बचा-बचाया सब उसे दे दिया। मन-ही-मन सोचा, कितना अच्छा हुआ, जो इतनों का काम चल गया। मेरा क्या है, पानी पीकर मजे में अपनी गुज़र कर लूंगा।

इतना कहकर जैसे ही वह पानी पीने को हुआ कि हांफता हुआ एक कुत्ता आ गया। गरमी से वह बेहाल हो रहा था और बहुत ही प्यासा था। राजा ने झट पानी का बर्तन उठाकर उसके सामने रख दिया। कुत्ता सारा पानी पी गया।

राजा को न खाना मिला, न पानी, पर उसे जो मिला, उसका मूल्य कौन आंक सकता है? □

१२/ सहनशीलता का फल

एक फकीर थे। एक दिन वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में देखते क्या हैं कि एक नौजवान हाथ में तम्बूरा लिये बैठा है और गन्दे गीत गा रहा है।

फकीर वहां जाकर रुक गया। चिल्ला-चिल्लाकर कहने

लगा, "अल्लाताला तू सबसे बड़ा है। तू ही सबका परवरदिगार है। बिना तेरे इस दुनिया का पत्ता भी नहीं हिल सकता।"

नौजवान मस्ती में गा रहा था। उसने फकीर को चिल्लाते देखा तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने चीखकर कहा, "चुप हो जा, क्या बकता है ?"

फकीर ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। बोला, "हे खुदा ! तू बेअकलों को अकल दे।"

नौजवान ने आव देखा न ताव, हाथ का तम्बूरा लेकर फ़कीर के सिर पर दे मारा। तम्बूरा टूक-टूक हो गया। फकीर मुस्कराया और बिना एक शब्द के आगे बढ़ गया।

अपनी झोंपड़ी पर आकर फ़कीर ने अपने शागिर्द को सब हाल सुनाया और कहा, "तू उस नौजवान के पास जा और उसे तम्बूरे की कीमत दे आ। एक थाली में मिठाई भी। गुस्सा बहुत बुरी चीज है। मुझे अफसोस है कि मेरी वजह से उसे इतना गुस्सा आया।"

शिष्य तम्बूरे का दाम और मिठाई लेकर वहां गया और उससे कहा, "ये चीजें फकीर साहब ने तुम्हारे लिए भेजी हैं।"

इतना सुनते ही नौजवान की आँखें खुल गयीं। वह दौड़ा-दौड़ा फकीर के पास आया और अपनी करनी के लिए माफी मांगने लगा।

फकीर ने बड़े प्यार से उसे सीने से लगा लिया। □

१३ / कायर मत बनो

एक बार गुजरात विद्यापीठ की कुछ छात्राएं श्री किशोरलाल मशरूवाला के पास गईं। उन्होंने कहा, "हमें कभी-कभी लड़के छेड़ते हैं। हम क्या करें ?"

किशोरलालभाई गांधीजी के परम अनुयायी थे। उन्होंने उन बहनों की बात सुनी और सहज भाव से बोले, "अपने पैरों की चप्पल उतारो और उनकी ख़बर लो।"

छात्राएं स्तब्ध रह गयीं। अहिंसा के पुजारी ने हिंसा का यह रास्ता कैसे बता दिया ! उन्हें तो कोई अहिंसक उपाय चाहिए था। उन्होंने कहा, "यह तो हिंसा का मार्ग है। और कुछ बताइये।"

किशोरलालभाई ने उसी सहज भाव से कहा, "तुम्हें यह रास्ता ठीक नहीं लगता तो जाओ, बापू से पूछो।"

वे बहनें बापू के पास पहुँचीं। उन्हें सारी बात बताकर बोलीं, "बापू, अहिंसा के व्रती हिंसा का सहारा कैसे ले सकते हैं ?"

गांधीजी ने क्षणभर उनकी ओर देखा, फिर कहा, "किशोर-लाल ने यही बताया ? मैं तो कहता हूँ कि यदि कोई तुम्हारे साथ बलात्कार करना चाहे और तुम्हारे पास छुरी हो तो तुम उसे भोंक दो। इसे मैं अहिंसा ही कहूँगा।"

गाँधीजी कई बार पहले भी कह चुके थे कि अगर हिंसा और कायरता में चुनाव करना हो तो वह हिंसा को ही चुनने की सलाह देंगे।

इस प्रसंग से बहनों ने एक ही निष्कर्ष निकाला और वह यह कि उन्हें छुरी की तेज धार की तरह तेजस्वी बनना चाहिए, जिससे कोई भी उनकी ओर बुरी निगाह से न देख सके। यही बापू का आशय था। □

अपने साधना-काल में एक दिन महावीर एक ऐसे निर्जन स्थान पर ठहरे, जहाँ एक यक्ष का वास था। वह कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान-मग्न हो गये। रात को यक्ष आया तो अपने स्थान पर एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर आग-बबूला हो गया। बड़े जोर से दहाड़ा। सारी वनस्थली गूंज उठी। वन्यजन्तु भयभीत होकर इधर-उधर दौड़ने लगे, लेकिन महावीर का ध्यान भंग नहीं हुआ। तब यक्ष ने हाथी आदि के रूप धारण करके उन्हें सताया, फिर भी वह विचलित न हुए। अन्त में उसने भयंकर विषधर बनकर उनपर दृष्टिपात किया, लेकिन उसके विष का उनपर कोई प्रभाव न पड़ा। यह देखकर यक्ष ने आगे बढ़कर पूरे वेग से उनके पैर के अँगूठे पर मुँह मारा, महावीर फिर भी अप्रभावित रहे। यक्ष ने अब अन्तिम प्रयत्न किया। वह उनके शरीर पर चढ़ गया और गले पर उन्हें काटा। पर महावीर महावीर ठहरे। यथावत ध्यान में मग्न रहे। विवश होकर नाग-रूपी यक्ष नीचे उतर आया और पस्त होकर उनसे कुछ पग की दूरी पर पड़ रहा।

ध्यान पूर्ण होने पर महावीर ने आँखें खोलीं तो उन्हें विषैला नाग दिखाई दिया। उन्होंने उसपर प्यार की वर्षा की, उसके मंगल की कामना की। सर्प का विष अमृत के रूप में परिणत हो गया।

इस घटना से यह स्पष्ट है कि अपने कषायों को जीतने के लिए मन की एकाग्रता, समता और प्रेम सम्पादित करके ही व्यक्ति महान् बन सकता है, महावीर का पद प्राप्त कर सकता है। □

१५ / तन्दुरुस्ती का रहस्य

एक बादशाह था। वह बड़ा ही नेक और मेहरबान था। उसकी एक साधु के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह साधु किसी दूसरे नगर में रहता था। वहां कोई अच्छा इलाज करने वाला नहीं था। एक दिन बादशाह ने सोचा कि अगर उन साधु के आश्रम में कोई बीमार पड़ जाय तो बड़ी हैरानी होगी। इसलिए उसने अपने हकीम से कहा कि तुम उस नगर में जाओ और साधु का कोई चेला बीमार पड़ जाय तो उसकी दवा करो।

हकीम उस शहर में पहुँच गया। लेकिन एक दिन बीता, दो दिन बीते, दस दिन बीते, एक भी आदमी उसके पास इलाज के लिए नहीं आया। हकीम खाली बैठा-बैठा परेशान हो गया। वह घर से इतनी दूर लोगों की सेवा करने आया था, लेकिन वहाँ कोई उसकी सेवा लेने वाला ही नहीं था। पर उसने धीरज नहीं छोड़ा।

राह देखते-देखते जब कई महीने निकल गये तो तंग आकर वह साधु के पास गया और कहा, "महाराज, मुझे बादशाह ने आपके चेलों का इलाज करने भेजा है, लेकिन एक भी आदमी मेरे पास नहीं फटका। आखिर माजरा क्या है?"

साधु मुस्कराया और बोला, "हकीमजी, आप मेरे चेलों को जानते नहीं। उनकी आदत है कि जबतक उन्हें जोर की भूख नहीं लगती, वे खाना नहीं खाते, और जब खाते हैं तब थोड़ी भूख रहते ही खाना छोड़ देते हैं।"

हकीम ने समझ लिया कि ऐसी जगह रोग नहीं आ सकता। उसने अपना बिस्तर बांधा और चला आया। □

१६ / ऊँचाई का रास्ता

हज़रत अली के पास एक नौकर था। वह एक दिन किसी बात पर नाराज हो गया और नौकरी छोड़कर चला गया। उसके बाद हज़रत अली मस्जिद में नमाज पढ़ने गये। तो वह नौकर चुपचाप वहाँ पहुंचा और तलवार निकालकर हज़रत अली पर वार किया।

हज़रत अली के गहरी चोट आयी। खून बहने लगा। कुछ लोगों ने उन्हें उठाया और उनकी सेवा करने लगे। कुछ ने दौड़-कर नौकर को पकड़ लिया और हजरत अली के सामने उपस्थित किया।

इतने में हज़रत अली को प्यास लगी। उन्होंने पानी मांगा। लोग दौड़े और शरबत ले आये। गिलास में भरकर जब हज़रत अली के सामने पेश किया गया तो उन्होंने नौकर की ओर इशारा करके कहा, "मुझे नहीं, पहले उसे पिलाओ। देखते नहीं, बेचारा कितना थक गया है और किस बुरी तरह से हांफ रहा है!"

लोगों ने नौकर की ओर गिलास बढ़ाया तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। हजरत अली ने बड़े प्यार से कहा, "भाई मेरे, रोओ मत। गलती हम सबसे हो जाती है। शरबत पी लो।"

नौकर उनके पैरों पर गिर गया और अपने किये पर बहुत ही पछताने लगा।

हज़रत अली ने उसे पुचकारा और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे प्यारे भाई, जो अपनी गलती को जान लेता है और आगे न करने का फैसला भी कर लेता है, वह जिन्दगी में बहुत ऊँचा उठ जाता है।" □

१७ / गुस्से की शर्तिया दवा

एक स्त्री थी। उसे बड़ा गुस्सा आता था। जरा-सी कोई बात होती कि उसका पारा चढ़ जाता और वह कहनी-अनकहनी सब तरह की बातें कह डालती।

उसके इस स्वभाव से सारा घर और मोहल्ला हैरान था। लोग उससे बातें करने में घबराते थे। वह भी अपने से बहुत परेशान थी। जब उसका गुस्सा उतरता था तो उसे बड़ा पछतावा होता था, लेकिन फिर भी वह अपनी आदत से लाचार थी।

एक दिन एक साधु उस स्त्री के घर आया। स्त्री ने कहा, "महाराज, मैं बहुत ही दुःखी हूँ। मुझे बहुत गुस्सा आता है। मैं उस पर काबू नहीं कर पाती।"

साधु ने कहा, "कोई बात नहीं है। मेरे पास गुस्से को दूर करने की बहुत बढ़िया दवा है। कल मैं आऊँगा तो साथ लेता आऊँगा।"

अगले दिन साधु आया तो एक शीशी में दवा लेता आया। उसने स्त्री को दवा देते हुए कहा, "यह दवा इसी शीशी से पीया जाती है। जब तुम्हें गुस्सा आवे, तो, इस शीशी को मुंह में लगाकर उस समय तक दवा पीती रहना जबतक कि गुस्सा दूर न हो जाय। मैं सात दिन बाद फिर आऊँगा।"

इतना कहकर साधु चला गया। स्त्री ने उसकी दवा का प्रयोग शुरू किया। जैसे ही उसे गुस्सा आता कि शीशी को मुंह से लगा लेती।

सात दिन बाद साधु आया तो स्त्री उसके पैरों में गिर पड़ी। बोली, "महाराज, आपने मुझे बचा लिया। ऐसी शर्तिया दवा दी कि मेरा गुस्सा जाने कहाँ चला गया। कृपा करके इतना बता दीजिये कि आपने यह दवा क्या दी थी ?"

साधु ने हँसकर कहा, "पगली ! शीशी में कुछ नहीं था। पानी था। शीशी के मुँह में आ जाने से तुम बोल नहीं सकती थीं, और गुस्सा दूर करने की शर्तिया दवा मुँह बन्द कर लेना है।" □

१८ / बीमारी का इलाज

एक राजा बहुत बीमार हो गया। दूर-दूर से इलाज करने वाले आये, लेकिन उसे फायदा नहीं पहुँचा। लोग बड़े दुखी हुए। अब क्या हो ?

अचानक एक साधु आया। उसने राजा को देखा। बोला, "यह तो जरा-सी देर में ठीक हो जायँगे। इनको पहनाने के लिए किसी ऐसे धनी की पोशाक लाओ, जो सुखी हो।"

राजा के दीवान ने कहा, "महाराज, यह तो बड़ी आसान बात है।"

राजा के महल से कुछ दूरी पर एक सेठ रहता था। दीवान दौड़ा-दौड़ा उसके यहाँ पहुँचा। कहा, "सेठजी, राजा को अच्छा करने के लिए किसी पैसे वाले की पोशाक चाहिए, लेकिन साधु ने कहा है कि उस आदमी का सुखी होना जरूरी है।"

सेठ ने कहा, "दीवानजी, पोशाक एक नहीं, चार ले जाओ, लेकिन बात यह है कि मैं सुखी नहीं हूँ।"

दीवान दूसरे सेठ के यहाँ पहुँचा। उसने भी वही कहा। दीवानजी ने रात तक जाने कितने घरों में चक्कर काटे, पर कोई भी सुखी नही मिला।

हैरान होकर लौटने लगा तो नदी के उस पार से बाँसुरी का स्वर सुनाई दिया। कोई आनन्द से बाँसुरी बजा रहा था।

दीवान ने सोचा, अब काम बन गया। उसने झट नदी पार की और वहाँ पहुँचा। देखा, एक नौजवान मस्ती से तान छेड़ रहा है।

वह एक पेड़ की आड़ में बैठा था। चारों ओर गहरा अँधेरा छाया था। दीवान ने वहाँ पहुँचकर कहा, "ओ भाई, तू बड़ा सुखी जान पड़ता है। ला, अपने कपड़े राजा के लिए दे दे।"

नौजवान ने बाँसुरी बजाना बन्द कर दिया और खूब ज़ोर से हँसा। बोला, "मेरे पास कपड़े हैं कहाँ! मैं तो बस एक लँगोटी लगाये हुए हूँ।" □

१९ / नया वसन्त

एक आदमी था। वह जीवन से बड़ा निराश हो गया था। हर घड़ी उदास रहता था। उसे लगता था कि वह दुनिया में अकेला है। उसे कोई प्यार नहीं करता।

वसन्त का मौसम आया। भाँति-भाँति के फूल खिल उठे। उनकी महक से चारों ओर आनन्द छा गया। लेकिन वह आदमी अपने कमरे में ही बन्द रहा।

एक दिन अचानक एक लड़की उसके कमरे के किवाड़ खोलकर अन्दर आयी। उस आदमी को गुमसुम देखकर सहम उठी। बोली, "आप इतने उदास क्यों हैं?"

आदमी ने कहा, "मुझे कोई प्यार नहीं करता। मैं अकेला हूँ।"

लड़की ने कहा, "यह तो बड़ी बुरा बात है कि आपको कोई प्यार नहीं करता, पर यह बताइये कि आप किस-किसको प्यार

करते हैं ?"

आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया।

लड़की बोली, "आप बाहर आइये। देखिए, आपके दरवाजे पर कितना प्यार बिखरा पड़ा है। आप चाहें तो भर-भर हाथों बटोर सकते हैं।"

इतना कहकर उस लड़की ने उस आदमी का हाथ पकड़ा और कमरे के बाहर लाकर हँसते-विहँसते फूलों के बीच उसे खड़ा कर दिया।

बोली, "आप प्यार चाहते हैं। लीजिए, जितना चाहिए, इनसे ले लीजिए। देखिए, ये कितने बढ़िया साथी हैं। खुशी-खुशी प्यार देते हैं, पर बदला नहीं चाहते। क्यों, है न ?"

इन शब्दों को सुनकर उस आदमी का जैसे नया जन्म हो गया। उसके मन की गाँठ खुल गयी। जीवन में वसन्त हिलोरें लेने लगा। □

२० / बाहर का दीया

एक आदमी था। वह रोज बड़े तड़के मन्दिर में जाता और एक दीपक जलाकर रख आता। यह सिलसिला एक-दो महीने से नहीं, लम्बे अर्से से चल रहा था।

मन्दिर के ठीक सामने घर की बैठक में बैठा एक नौजवान उसे बिला नागा आते देखकर चकित हो उठा। एक दिन जब वह दीपक जलाकर जाने लगा तो उसने उसे रोककर पूछा, "भाई साहब, भगवान् में तुम्हारी बड़ी गहरी श्रद्धा मालूम होती है। न जाड़ा देखते हो, न गर्मी, न बरसात, नित्य नियम से यहाँ

आकर दीया जला जाते हो !"

वह आदमी हँसा। बोला, "सवाल श्रद्धा का नहीं, दूसरा है। एक मरतबा मैं एक मुकद्दमे में पड़ गया। मैंने भगवान् से प्रार्थना की कि मैं मुकदमा जीत जाने पर रोज़ मन्दिर में आकर दीया जलाऊँगा। भगवान् ने सुन ली। मेरा जीत हो गयी। तबसे ही मैं बराबर अपने वचन का पालन कर रहा हूँ।"

नौजवान ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों भाई, मुक़दमा क्या था ?"

"अरे, क्या बताऊँ !" गम्भीर होकर वह आदमी बोला, "मेरे घर के बराबर पड़ोसी की बड़ी अच्छी ज़मीन थी। मैंने नीचे के लोगों को मिलाकर उसे अपने नाम करा लिया। पड़ोसी उस मामले को अदालत में ले गया। भगवान् ने कृपा करके पड़ोसी को हरा दिया। जमीन मेरी हो गयी।"

नौजवान ने उस आदमी को कठोर दृष्टि से देखकर कहा, "हमने तो सुना था कि भगवान् सदा न्याय में साथ देते हैं, अन्याय में नहीं।"

उस आदमी ने मुँह बनाया। बोला, "क्या बेतुकी बात करते हो !" और आगे बढ़ गया।

नौजवान ने समझा, वह आदमी बाहर दिया जलाता था, पर उसके अन्दर का दीया बुझा पड़ा था। □

२१ / कर्तव्य

हज़रत उमर वेश बदलकर लोगों के बीच घूमा करते थे। देखते थे, किसी को कोई कष्ट तो नहीं है। एक बार वह किसी

झोंपड़ी के पास से गुज़र रहे थे। उन्होंने देखा, एक स्त्री फर्श पर बीमार पड़ी है। चूल्हे पर हाँड़ी चढ़ी है, पर बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। उन्होंने स्त्री के नज़दीक जाकर पूछा, "तुम बच्चों को खाने को क्यों नहीं देतीं ?"

स्त्री ने उनकी ओर देखा और बोली, "इन्हें खिलाने को मेरे पास है क्या ?"

"इस हाँड़ी में क्या पक रहा है ?"

"मुझसे क्या पूछते हो, अपने-आप क्यों नहीं देख लेते !"

हज़रत उमर ने देखा—उसमें खाली पानी उबल रहा था। स्त्री ने बच्चों को बहलाने के लिए यह तदबीर की थी।

उमर ने कहा, "तुम्हारे पास कुछ नहीं था, तो तुम ख़लीफ़ा के पास क्यों नहीं गयीं ?"

स्त्री तेज होकर बोली, "क्या ख़लीफ़ा का यह फर्ज नहीं कि इसकी जानकारी रखें ?"

हजरत उमर ने सहमकर कहा, "ख़लीफ़ा के राज्य में इतने लोग हैं। वह आख़िर हर किसी की देखभाल कैसे कर सकते हैं ?"

स्त्री के चेहरे पर तनाव आ गया। बोली, "अगर ख़लीफा मेरे पति को लड़ाई पर भेज सकते हैं, तो क्या उन्हें उसके बाद उसके स्त्री-बच्चों के खाने-पीने का इन्तज़ाम ख़ुद नहीं करना चाहिए ?"

बात उसकी सही थी। उमर ने फ़ौरन शाही भण्डार से खाने का सामान मँगवाया, सबको खिलाया और आगे का सारा इन्तजाम भी कर दिया। □

२२ / साधु का उपदेश

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास अपार धन था। उसका व्यापार दूर-दूर तक फैला था।

एक दिन एक साधु उसके दरवाज़े पर आया। सेठ ने उसे भिक्षा दी। भिक्षा लेकर जब साधु जाने लगा तो सेठ ने उसे रोककर कहा, "महाराज, मुझे कुछ उपदेश तो देते जाइये।"

साधु ने उसकी ओर देखा। बोला, "हफ्ते-भर बाद, आज के ही दिन, फिर आऊंगा। तब उपदेश दूंगा।"

अपने वादे के अनुसार अगले हफ्ते साधु आया। सेठ तो उसकी राह देख ही रहा था। उसने उसे देने के लिए तरह-तरह के पकवान तैयार करा रखे थे। साधु ने उसके आगे अपना कमण्डल कर दिया।

लेकिन सेठ जैसे ही उसमें कुछ पकवान डालने को हुआ कि उसका हाथ वहीं-का-वहीं रुक गया। बोला, "स्वामीजी, इसमें तो कूड़ा है।"

"तो ?" साधु ने प्रश्नभरी निगाह से उसकी ओर देखा।

सेठ ने कहा, "इसे साफ़ कर दीजिये।"

साधु ने उसे झाड़कर पोंछ दिया। सेठ ने उसमें खाने की चीज़ें डाल दीं।

भिक्षा लेकर साधु जाने लगा, तो सेठ ने कहा, "महाराज, आप तो जा रहे हैं! क्या भूल गये कि आज आपने मुझे उपदेश देने का वचन दिया था ?"

साधु बोला, "अरे, क्या तुझे उपदेश नहीं मिला ? सुन, मेरे कमण्डल में गन्दगी थी, तो तूने उसमें खाने की चीज़ें नहीं दीं। उसे साफ़ करा लिया। इसी तरह तेरे अन्दर काम, क्रोध, लोभ,

मोह आदि जाने कितनी बुराइयाँ भरी पड़ी हैं। पहले उन्हें साफ़ कर। तब कुछ पा सकेगा।" □

२३ / सब पर दया

अल्बर्ट श्वाइट्जर जीव-दया के महान् पुजारी थे। वह मनुष्यों पर ही नहीं, सारे जीवों पर दया रखते थे।

एक बार वह अपने मित्र के साथ कहीं जा रहे थे। वहाँ सवारी नहीं थी और स्टेशन कुछ दूर था। उन्होंने एक लाठी पर अपना सामान लटकाया और दोनों मित्र लाठी के एक-एक सिरे को अपने कन्धे पर रखकर स्टेशन की ओर चल पड़े।

गाड़ी आने में थोड़ा ही समय रह गया था। इसलिए दोनों मित्र बड़ी तेजी से बढ़े जा रहे थे। आगे मित्र थे, पीछे वह।

जब स्टेशन थोड़ी ही दूर रह गया तो उन्होंने और तेज़ी से क़दम बढ़ाया।

अकस्मात् मित्र को बड़े जोर का धक्का लगा और पूरा सामान, जो लाठी के बीच में रखा था, खिसककर क़रीब-क़रीब उनके सिर पर आ गया। वह गिरते-गिरते बचे।

उन्होंने घबराकर श्वाइट्जर से पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है?"

श्वाइट्जर बोले, "आप मुझे माफ करें। लेकिन यह देखिये, रास्ते में एक कीड़ा पड़ा है। किसी के भी पैर के नीचे दबकर मर सकता है। इसी को बचाने के लिए मैं एक ओर को हुआ तो मेरा सन्तुलन बिगड़ गया और सारा बोझ आप पर जा पड़ा। जरा रुक जायें, मैं अभी इस कीड़े को उठाकर एक ओर रखे देता हूँ।"

इतना कहकर उन्होंने एक लकड़ी लेकर कीड़े को उसपर चढ़ाया और बड़ी ममता से उठाकर उसे ऐसी जगह रख दिया, जहाँ किसी का भी पैर नहीं पड़ सकता था।

उसके बाद दोनों ने दौड़कर रास्ता पार किया, तब कहीं उन्हें गाड़ी मिली। □

२४ / भूत कुछ नहीं

'एक बालक था। वह बड़ा निडर था। घूमते-घूमते वह अक्सर बस्ती के बाहर नदी के किनारे चला जाता और थोड़ी देर वहाँ रुककर लौट आता। उसके बाबा उसे बड़ा प्यार करते थे। उन्हें लगा कि किसी दिन वह नदी में गिर न जाय! इसलिए एक दिन उन्होंने उससे कहा, "बेटे, तुम अकेले नदी के किनारे मत जाया करो।"

बालक ने पूछा, "क्यों?"

बाबा ने कहा, "वहाँ भूत रहता है।"

भूत की बात सुनकर बालक के मन में इतना डर बैठ गया कि उसके लिए घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। जरा-जरा-सी बात में भूत उसके सामने आ खड़ा होता!

बाबा यह देखकर बड़े हैरान हुए। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बालक भूत की बात से इतना डर जायगा!

तब उन्होंने एक दिन बालक के हाथ में एक धागा बाँध दिया और कहा, "बेटे, अब तुम्हें भूत से डरने की जरूरत नहीं है। यह देखो, भगवान् तुम्हारे साथ रहेंगे।"

बालक खुश हो गया। वह फिर बाहर घूमने लगा। एक

दिन संयोग से उसके हाथ का धागा टूटकर कहीं गिर गया। बालक घबराया हुआ बाबा के पास आया। खाली कलाई बाबा को दिखाकर बोला, "बाबा, भगवान् चले गये! मैं अब क्या करूँ?"

अब बाबा ने उसको समझाकर कहा, "बेटे, नदी के किनारे भूत-वूत कुछ नहीं था और न धागे में भगवान् थे। ये तो हमारे बनाये हुए थे। आदमी को डरना नहीं चाहिए। जिसका दिल मजबूत होता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

बालक ने अब असली बात समझी और वह आनन्द से रहने लगा। □

२५ / मन की महिमा

एक बार भगवान् बुद्ध के दो शिष्य उनसे मिलने जा रहे थे। पूरे दिन का सफर था। चलते-चलते रास्ते में एक नदी पड़ी। उन्होंने देखा कि एक स्त्री पानी में डूब रही है।

बौद्ध भिक्षुओं के लिए स्त्री का स्पर्श वर्जित माना जाता है। ऐसा दशा में क्या हो?

उन दोनों भिक्षुओं में से एक ने कहा, "हमें धर्म की मर्यादा का पालन करना चाहिए। स्त्री डूबती है तो डूबे! हमें क्या!"

लेकिन दूसरा भिक्षु अत्यन्त दयावान था। उसने कहा, "हमारे देखते कोई इस तरह मरे, यह मैं तो सहन नहीं कर सकता।"

इतना कहकर वह पानी में कूद पड़ा, डूबती स्त्री को पकड़ लिया और कन्धे का सहारा देकर किनारे पर ले आया।

दूसरे भिक्षु ने उसकी बड़ी भर्त्सना की, रास्ते भर वह कहता रहा कि मैं जाकर तथागत से कहूँगा कि आज तुमने मर्यादा का उल्लंघन करके कितना बड़ा पाप किया है !

दोनों बुद्ध के सामने पहुँचे तो दूसरे भिक्षु ने एक साँस में सारी बात कह सुनाई। बोला, "भन्ते, मैंने इसको बहुतेरा रोका, पर यह माना ही नहीं। बड़ा भयंकर पाप इसने किया है।"

बुद्ध ने उसकी बात बड़े ध्यान से सुनी। फिर पूछा, "इस भिक्षु को उस स्त्री को कंधे पर बाहर लाने में कितना समय लगा होगा ?"

"कम-से-कम पन्द्रह मिनट तो लग ही गये होंगे।"

"अच्छा," बुद्ध ने प्रश्नभरी मुद्रा में कहा, "इस घटना के बाद यहाँ आने में तुम लोगों को कितना समय लगा ?"

भिक्षु ने हिसाब लगाकर उत्तर दिया, "यही कोई छः घंटे !"

बुद्ध ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा, "भले आदमी, इस बेचारे ने तो उस स्त्री को पन्द्रह मिनट ही अपने कंधे पर रक्खा, लेकिन तू तो उसे छः घंटे से अपने कंधे पर बिठाये हुए है। बोल दोनों में बड़ा पापी कौन है ?"

बेचारा भिक्षु निरुत्तर हो गया। वह समझ गया कि मन की बड़ी महिमा है। □

२६/दीर्घ जीवन का राज़

एक बार सुविख्यात दार्शनिक कन्फ्यूशस से मिलने एक सज्जन आये। वह उनसे इधर-उधर की बातें करते रहे। उन्होंने बहुत-से प्रश्न पूछे और कन्फ्यूशस ने उनके उत्तर दिये।

अन्त में उन सज्जन ने पूछा, "यह बताइये कि दीर्घजीवी कौन होता है ?"

कन्फ्यूशस इस प्रश्न पर मुस्कराये। बोले, "जरा उठकर मेरे पास आइये।"

वह आये तो कन्फ्यूशस ने कहा, "मेरे मुँह में देखिये, जीभ है या नहीं ?"

कन्फ्यूशस ने मुंह खोल दिया। उन सज्जन ने झुककर मुंह के अन्दर देखा और बोले, "जी हाँ, जीभ है।"

कन्फ्यूशस ने कहा, "अच्छा. अब देखिये कि दांत हैं या नहीं ?"

उन भाई ने फिर झुककर कन्फ्यूशस के मुँह के अन्दर देखा और बोले, "दाँत तो एक भी नहीं है।"

कन्फ्यूशस ने कहा, "अरे, यह क्या हुआ ? जीभ तो दाँतों से पहले पैदा हुई था। उसे दाँतों से पहले जाना चाहिए था। क्या आप बता सकेंगे कि ऐसा कैसे हुआ ?"

वह महानुभाव बड़ी हैरानी में पड़े। उन्हें सूझा ही नहीं कि क्या जवाब दें। थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, "मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है। आप ही बताइये।"

कन्फ्यूशस बोले, "इसका कारण यह है कि जीभ कोमल है, दाँत कठोर हैं। जिसमें लचीलापन होता है, वह अधिक समय तक जीता हैं।" □

२७ / रोग : कारण और निवारण

किसी नगर में एक आदमी रहता था। वह पढ़ा-लिखा था। चतुर था। उसमें धन कमाने की लालसा पैदा हुई। उसके लिए उसने प्रयत्न आरम्भ किया। देखते-देखते उसके पास लाखों की सम्पदा हो गई। पर ज्यों-ज्यों पैसा आता गया, उसका लोभ बढ़ता गया। साथ ही धन का ढेर भी ऊँचा होता गया।

वह बड़ा खुश था। कहाँ तो उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी और कहाँ अब उसकी तिजोरियाँ भरी थीं और एक-से-एक बढ़िया उसके मकान खड़े थे ! उसे सब प्रकार की सुविधाएँ थीं। धन के बल पर वह जो चाहे प्राप्त कर सकता था।

लेकिन एक चीज थी, जिसका उसके जीवन में बड़ा अभाव था। उसके कोई लड़का नहीं था।

धीरे-धीरे उसकी किशोरावस्था बीतने लगी, पर धन-सम्पत्ति के प्रति उसकी मूर्च्छा में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

अचानक एक दिन, रात को बिस्तर पर पड़े-पड़े उसने देखा कि सामने कोई अस्पष्ट-सी आकृति खड़ी है। घबराकर पूछा, "कौन ?"

उत्तर मिला, "मृत्यु।"

इतना कहकर वह आकृति अन्तर्धान हो गई।

आदमी बेहाल हो गया। मारे बेचैनी के उसे नींद नहीं आई। इतना ही नहीं, उस दिन से जब भी वह एकान्त में होता, मौत सामने आ जाती। उसका सारा सुख मिट्टी हो गया। मन चिन्ताओं से भर गया। वह हर घड़ी भयभीत रहने लगा।

कुछ ही दिनों में उसके चेहरे का रंग बदल गया। वह वैद्य-डाक्टरों के पास गया, लेकिन उससे लाभ नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों दवा की, रोग घटने के बजाय बढ़ता ही गया।

लोगों ने उसकी यह दशा देखी तो कहा कि नगर के उत्तरी छोर पर एक साधु रहता है, वह सब प्रकार की व्याधियों को दूर कर देता है।

बड़ी आशा से वह दौड़ता हुआ साधु के पास गया और उसे अपनी सारी दास्तान कह सुनाई। अन्त में उनके चरण पकड़कर रोते हुए प्रार्थना की, "भगवन् ! मेरा कष्ट दूर करो। मौत मेरा पीछा नहीं छोड़ती।"

साधु ने सारी बात ध्यान से सुनी, कहा, "भले आदमी! मोह और मृत्यु परम मित्र हैं। जबतक तुम्हारे पास मोह है, मृत्यु आती ही रहेगी। मृत्यु से छुटकारा तभी मिलेगा, जबकि तुम मोह का पल्ला छोड़ोगे।"

आदमी ने गिड़गिड़ाकर कहा, "महाराज, मैं क्या करूं ? मोह छूटता ही नहीं।"

साधु सांत्वना देते हुए बड़े प्यार से बोले, "परेशान मत होओ, मैं तुम्हें मोह-विसर्जन का उपाय बताता हूं। कल से ही तुम एक काम करो। एक हाथ से लो, दूसरे से दो। मुट्ठी मत बांधो। हाथ को खुला रखो। तुम्हारा रोग तत्काल दूर हो जायगा।"

साधु की बात उसके दिल में घर कर गई। नये जीवन का आरम्भ हुआ। कुछ ही दिन में उसने देखा कि उसका न केवल रोग ही दूर हुआ, बल्कि उसको उस आनन्द की उपलब्धि भी हुई, जो पहले कभी नहीं मिला था। □

२८ / सत्य-निष्ठा

बचपन में गाँधीजी को घर के लोग 'मोनिया' कहकर पुकारते थे। मोनिया बड़ा ही शरारती था। एक बार बच्चों ने मिलकर मन्दिर के खेल में ठाकुरजी को झूला झुलाने का तय किया। ऐसे खेलों में वह मिट्टी की मूर्ति बना लेते थे, लेकिन इस बार उन्होंने सोचा कि लक्ष्मी नारायण के मन्दिर से कुछ असली मूर्तियां उठा लाएं। फिर क्या था! पांच-छः बच्चों की टोली मन्दिर की ओर चल दी। निश्चय हुआ कि और बालक तो इधर-उधर छिपे रहें और सबसे छोटा 'चन्दू' सिंहासन पर से मूर्तियाँ उठा लाए।

संयोग से पुजारी आराम कर रहा था। चन्दू चुपचाप एक-एक करके मूर्तियाँ उठाकर कुर्ते के पल्लू में रखने लगा। लेकिन बालक तो बालक ही ठहरा ! उतावली में मूर्तियाँ आपस में टकरा गईं। जैसे ही आवाज़ हुई कि पुजारी को पता चल गया। चन्दू ने यह देखा तो वहाँ से भागा। उसके साथी भी भागे। पुजारी ने उन्हें पकड़ने का कोशिश की, लेकिन एक भी बालक हाथ न पड़ा। अपनी जान छुड़ाने के लिए चन्दू ने मूर्तियाँ आनन्द बाबा के मन्दिर के आँगन में फेंक दीं।

बेचारा पुजारी अब क्या करे! मूर्तियाँ उसे कैसे मिलें ? और कोई रास्ता न सूझा तो उसने चन्दू के बाप के पास जाकर शिकायत की। सारे बच्चे बुलाये गए। सबसे एक ही जवाब मिला, "हमें पता नहीं। हम तो मन्दिर में खेल रहे थे। पुजारी योंही हमारे पीछे पड़ गया है।"

अन्त में मोनिया की बारी आई तो उसने निडर होकर कह दिया, "हमलोग मन्दिर के खेल के लिए मूर्तियाँ लेने गये थे। चन्दू ने उन्हें आनन्द बाबा के मन्दिर में डाल दिया है।"

बच्चों को काटो तो खून नहीं ! मोनिया भी जानता था कि

उन सबको अच्छी मरम्मत होगी, लेकिन झूठ बात उसके मुंह से न निकलनी थी, न निकली।

आगे क्या हुआ, पता नहीं। पर छोटे-बड़े सबने समझ लिया कि कुछ भी हो, मोनिया झूठ नहीं बोल सकता। □

२६ / प्यार की शक्ति

जापान में एक बहुत बड़े आदमी हुए हैं। उनका नाम था कागावा। लोग उन्हें 'जापान का गांधी' कहा करते थे। वास्तव में वह थे भी गांधीजी की ही तरह। शिकावा की मामूली-सी बस्ती में बड़ी सादगी से रहते थे और सबको प्यार करते थे।

उसी शहर में एक शैतान आदमी रहता था। वह किसी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। उसे सब बुरा कहते थे। जब उसने देखा कि चारों ओर कागावा की प्रशंसा होती है और लोग उसे पूजते हैं,तो उसके मन में बड़ी ईर्ष्या पैदा हुई।

वह कागावा का अहित करने की सोचने लगा। सोचते-सोचते उसने तय किया कि उनकी गर्दन काट दे। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। ऐसा निश्चय करके उन्हें सोते से जगाया।

कागावा उठे और उस आदमी की लाल-लाल आँखों और हाथ में तलवार देखकर समझ गये कि वह उन्हें मारने आया है। पर उनके चेहरे पर शिकन तक नहीं आई और वह उस आदमी को सद्बुद्धि देने और उसका कल्याण करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगे।

उस आदमी ने यह देखा तो चकित रह गया। वह तो उस सन्त को मारने आया था और सन्त को देखो, वह उसके भले के

लिए प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं ! उनके चेहरे पर शान्ति और प्रेम-भरी मुस्कराहट खेल रही है।

उसने तलवार फेंक दी और कागावा के चरणों पर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा।

कागावा ने बड़े प्यार से उसकी पीठ पर और सिर पर हाथ फेरा, उसके आँसू पोंछे और कहा, "कोई बात नहीं, भूल इंसान से ही होती है।"

उस दिन के बाद उस आदमी ने कभी किसी की बुराई नहीं की। उसका सारा जीवन ही बदल गया। □

३० / सबसे ग़रीब

इब्राहीम आदम बलख़ के बादशाह थे। वे बड़े ही नेक थे। प्रजा की भलाई का बराबर ध्यान रखते थे और इधर-उधर घूम-कर देखते रहते थे कि उसे कोई कष्ट तो नहीं है।

लेकिन आगे चलकर कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं कि उनका मन राजपाट की ओर से हट गया और वह सबकुछ छोड़कर फकीर हो गये।

एक बार एक अमीर आदमी उनके पास आया और हजार अशर्फ़ियों की एक थैली उनके सामने रखकर बोला, "यह थैली मैं आपके लिए लाया हूँ। मेहरबानी करके इसे मंजूर कीजिये।"

इब्राहीम ने उसकी तरफ देखा और कहा, "मुझे यह नहीं चाहिए। मैं ग़रीब की एक कौड़ी भी नहीं चाहता।"

अमीर बोला, "मैं गरीब नहीं हूँ। मेरे पास बहुत पैसा है।"

इब्राहीम ने कहा, "यह ठीक है कि तुम्हारे पास बहुत पैसा है,

लेकिन यह तो बताओ कि पैसे की तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई या अभी बनी हुई है ?"

अमीर इस बात पर कुछ हैरान-सा हुआ, फिर सँभलकर बोला, "आपके सवाल का जवाब देना बड़ा मुश्किल है। आप तो जानते ही हैं कि पैसे की इच्छा कभी किसी की पूरी नहीं होती। मेरे मन में पैसे की लालसा अभी बनी है और मेरी कमाई बराबर हो रही है।"

उसके इस जवाब पर इब्राहीम ने गम्भीर होकर कहा, "मेरे भाई, अमीर होते हुए भी पैसा बटोरने की जिसकी इच्छा बनी रहती है, उसे मैं सबसे ग़रीब मानता हूँ। इसलिए अपना पैसा ले जाओ। मुझे उसकी ज़रूरत नहीं है।"

अमीर उनकी बात सुनकर बहुत शर्मिन्दा हुआ और अपना-सा मुंह लेकर चला गया। □

३१ / लालच का नतीजा

किसी नगर में ब्राह्मणों के चार लड़के रहा करते थे। वे चारों ही बड़े ग़रीब थे। उनमें आपस में गहरी दोस्ती थी। अपनी ग़रीबी को दूर करने के लिए उन्होंने बहुत-से उपाय किये, लेकिन उनका कष्ट दूर नहीं हुआ। आखिर हैरान होकर उन चारों ने निश्चय किया कि और कहीं जाकर उन्हें धनोपार्जन का प्रयत्न करना चाहिए।

नगर छोड़कर वे चल दिये। चलते-चलते एक नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्हें एक साधु मिले। उन्हें दुखी देखकर साधु ने कारण पूछा। उन्होंने बता दिया। सुनकर साधु ने कहा, "मैं तुम्हें

चार दीये देता हूँ। एक-एक हाथ में लेकर जाओ। जहाँ दीपक गिरें, वहीं रुककर खुदाई करना। तुम लोगों को बहुत बड़ी दौलत मिल जायगी। लेकर लौट आना।"

दीपक लेकर चारों चल दिये। थोड़ी दूर जाने पर उनमें से एक का दीपक गिर गया। उसने रुककर खोदा तो वहाँ ताँबे की खान निकली। उसने साथियों से कहा, "जितना ताँबा चाहो, ले लो।" लेकिन वे बोले, "इससे हमारी ग़रीबी दूर नहीं होगी। आगे और भी कीमती चीजें मिलेंगी।"

वे चल दिये, कुछ दूर निकलते ही दूसरे का दीया गिर गया। वहाँ खोदा तो चाँदी की खान निकली। दूसरे साथी ने बाक़ी दो से कहा, "लो, चाँदी ले लो।" पर वे नहीं माने। बोले, "हम आगे जायँगे। वहाँ सोने की खान मिलेगी।"

आगे बढ़े कि तीसरे का दीया गिरा। खोदा तो सचमुच सोने की खान निकली। तीसरे ने चौथे से रुकने को कहा तो उसने वही बात कह दी, जो पहले दो ने कही थी और अकेला दौलत के लालच में आगे बढ़ चला।

काफी कदम चलने पर एक आदमी मिला। उसके माथे पर चक्र घूम रहा था और उसका बदन ख़ून से तरबतर हो रहा था। चौथे साथी ने उसके पास जाकर पूछा, "तुम कौन हो, तुम्हारे माथे पर यह चक्र कैसे घूम रहा है?"

उसका इतना कहना था कि उस आदमी के माथे से चक्र उछलकर इसके माथे पर लग गया और लगा चक्कर काटने।

चकित होकर उसने पूछा, "अरे, यह क्या हुआ?"

वह आदमी बोला, "यह चक्र किसी दूसरे के माथे से उतरकर इसी तरह मेरे लग गया था। अब यह तब उतरेगा जब मेरी-तुम्हारी तरह धन का कोई लोभी यहाँ आकर तुमसे बात करेगा।"

"लेकिन मेरे खाने-पीने का क्या होगा ?" उसने रुँधे गले से पूछा।

उस आदमी ने जवाब दिया, "यह चक्र उन लोगों के लिए है, जो धन के बेहद लोभी हैं। इस चक्र के लगते ही भूख-प्यास, नींद, सब ग़ायब हो जाती है। कोई हैरानी नहीं होती। बस, इस चक्र के घूमने का कष्ट रहता है। इस तरह यह अनन्त काल तक सताता रहता है।"

इतना कहकर वह आदमी तो चला गया, लेकिन धन का लोभी ब्राह्मण का वह लड़का जाने कबतक खून से लथपथ होकर उस दुःख को भोगता रहा। □

३२ / सुख और शान्ति

ढाई हज़ार साल पहले की घटना है। बुद्ध एक गाँव में ठहरे थे। एक आदमी उनके पास आया और बोला, "भन्ते, आप तीस साल से लोगों को शान्ति, सत्य और मोक्ष की बात समझा रहे हैं, लेकिन कितने लोग हैं, जिन्हें मोक्ष प्राप्त हो गया ?"

बुद्ध ने उसकी बात सुनी। बोले, "तुम आकर मिलना, तब तुम्हारी बात का जवाब दूंगा। लेकिन एक काम करना।"

"क्या ?" उस आदमी ने पूछा।

बुद्ध ने कहा, "सारे गाँव का चक्कर लगाकर लोगों से लिखवा लाना कि कौन शान्ति चाहते हैं, कौन सत्य और कौन मोक्ष।"

"आपने यह अच्छा कहा, भन्ते!" वह आदमी चकित होकर बोला, "कौन होगा ऐसा अभागा, जो इन चीजों को नहीं

चाहेगा ?"

बुद्ध ने कहा, "तुम एक बार पता तो लगाओ कि कौन आदमी किस चीज की कामना करता है।"

उस आदमी ने घंटों गाँव में चक्कर लगाया, लेकिन एक भी आदमी ऐसा न मिला, जो शान्ति, सत्य और मोक्ष चाहता हो। किसी ने कहा, मुझे धन चाहिए; किसी ने कहा, मुझे यश चाहिए; किसी ने कहा, मुझे रोगों से छुटकारा चाहिए; किसी ने कहा, मुझे सन्तान चाहिए; किसी ने कहा, मुझे नौकरी चाहिए; किसी ने कहा, मुझे लम्बी उमर चाहिए।

वह आदमी हैरान हो गया। फिर बुद्ध के पास आया। बोला, "यह तो बड़ा अजीब गाँव है, महाराज! कोई कुछ चाहता है, कोई कुछ; किन्तु शान्ति, सत्य और मोक्ष की आकांक्षा रखने वाला एक भी आदमी नहीं है।"

बुद्ध ने कहा, "इसमें अजीब क्या है! हममें से ज़्यादातर लोग सुख चाहते हैं, शान्ति नहीं, और सुख पाने के लिए वे शान्ति के उल्टे रास्ते पर चलते हैं। सुख का मार्ग शान्ति का मार्ग नहीं है।" □

२३ / त्याग और लोभ

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास बहुत धन था। उसकी तिजोरियाँ मोहरों से भरी थीं, लेकिन उसका लोभ कम नहीं होता था। जैसे-जैसे धन बढ़ता जाता था, उसकी लालसा और भी बढ़ती जाती थी।

सेठ बहुत ही कंजूस था। कभी किसी को एक कौड़ी भी नहीं

दे सकता था। अगर कोई उसके दरवाज़े पर आकर हाथ फैलाता तो वह उसे दुत्कार देता।

संयोग की बात कि एक दिन उसके यहाँ एक साधु आया। उसे देखकर अचानक सेठ को जाने क्या हुआ कि उसने एक पैसा उसकी झोली में डाल दिया। साधु चले गये।

लेकिन सेठ के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, ज़ब उसने देखा कि शाम को उसे एक मोहर प्राप्त हो गयी। पैसे के बदले में मोहर! वाह! मारे खुशी के वह कूदने लगा। परन्तु थोड़ी ही देर में उसकी सारी खुशी काफूर हो गई। उसके भीतर कोई कह रहा था, "ओ मूर्ख! तूने साधु को एक पैसा ही क्यों दिया? यदि एक मोहर दी होती तो तू न जाने कितना मालामाल हो जाता!"

इस विचार के आते ही सेठ ने अपने को धिक्कारा। हाँ, सचमुच उसने मूर्खता की। अब वह साधु के आने की बाट जोहने लगा, पर उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। अगले दिन ही वह साधु फिर आ गया।

साधु को देखते ही सेठ ने झट अपनी तिजोरी से एक मोहर निकाली और साधु की झोली में डाल दी। मोहर लेकर साधु चला गया तो सेठ के लिए एक-एक पल एक-एक युग के समान हो गया। वह चाहता था कि कैसे ही शाम हो जाय।

पर शाम तो हुई और रात भी हो गई, लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। मोहरें मिलना तो दूर, हाथ में आई मोहर भी निकल गई! वह सिर धुनने लगा। तभी आकाशवाणी हुई: "सेठ, याद रख—त्याग फलता है, लोभ छलता है!" □

३४ / शान्ति का मार्ग

एक व्यापारी था। उसने व्यापार में ख़ूब कमाई की। बड़े-बड़े मकान बनाये। नौकर-चाकर रक्खे, लेकिन भाग्य की बात कि उसके दिन फिर गये। व्यापार में घाटा आया और वह एक-एक पैसे के लिए मोहताज हो गया। जब उसकी हैरानी सहन से बाहर हो गई तो वह एक साधु के पास गया और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। अन्त में रोते हुए बोला, "महाराज, मुझे कोई रास्ता बताइये, जिससे शान्ति मिले।"

साधु ने पूछा, "तुम्हारा सबकुछ चला गया?"

व्यापारी ने कहा, "जीहाँ।"

साधु बोले, "तुम्हारा था तो उसे तुम्हारे पास रहना चाहिए था! वह चला कैसे गया?"

व्यापारी चुप।

"जन्म के समय तुम अपने साथ कितना धन लाये थे?"

"स्वामीजी, जन्म के समय तो सब खाली हाथ आते हैं।"

साधु बोले, "ठीक, अब यह बताओ कि मरते समय अपने साथ कितना ले जाना चाहते हो?"

"मरते समय साथ कौन ले जाता है, जो मैं ले जाऊँगा!"

साधु बोले, "जब तुम खाली हाथ आये थे और ख़ाली हाथ जाओगे तो फिर चिन्ता किस बात की करते हो?"

व्यापारो ने कहा, "महाराज, जबतक मौत नहीं आती तब-तक मेरी और मेरे घर वालों की गुजर-बसर कैसे होगी?"

साधु हँस पड़े। बोले, "जो धन पर भरोसा रक्खेगा, उसका यही हाल होगा। तुम्हारे हाथ-पैर तो हैं। उन्हें काम में लाओ। पुरुषार्थ सबसे बड़ा धन है। ईश्वर का भरोसा सबसे बड़ा भरोसा है। पुरुषार्थ करो, भरोसा ईश्वर का रक्खो। शान्ति का यही एक

मात्र रास्ता है।" व्यापारी की आँखें खुल गईं। उसका मन शान्त हो गया। जाने कितने वर्षों के बाद पहली बार रात को उसे चैन की नींद आई और उसके शेष वर्ष बड़े आनन्द में बीते। □

३५ / प्रभु की सीख

एक भिखारी था। उसका बूढ़ा शरीर सूखकर काँटा हो गया था। उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। उसकी आँखों की ज्योति चली गई थी। उसे कोढ़ हो गया था। बेचारा रास्ते के एक ओर बैठकर गिड़गिड़ाते हुए भीख माँगा करता था।

एक युवक उस रास्ते से रोज निकलता था। भिखारी को देखकर उसे बड़ा बुरा लगता। उसका मन बहुत ही दुखी होता। वह सोचता, वह क्यों भीख माँगता है ? जीने से उसे मोह क्यों है ? भगवान् उसे उठा क्यों नहीं लेते ?

एक दिन उससे न रहा गया। वह भिखारी के पास गया और बोला, "बाबा, तुम्हारी ऐसी हालत हो गई है। फिर भी तुम जीना चाहते हो ? तुम भीख माँगते हो, पर ईश्वर से यह प्रार्थना क्यों नहीं करते कि वह तुम्हें अपने पास बुला ले ?"

भिखारी उसकी बात सुनकर कुछ बोला नहीं ! नौजवान ने झुककर कहा, "बाबा, मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते ?"

भिखारी ने मुंह खोला। बोला, "भैया, तुम जो कह रहे हो, वही बात मेरे मन में भी उठती है। मैं भगवान से बराबर प्रार्थना करता हूँ, पर वह मेरी सुनता नहीं। शायद वह चाहता है कि मैं इस धरती पर रहूँ, जिससे दुनिया के लोग मुझे देखें और समझें कि एक दिन मैं भी उनकी ही तरह था, लेकिन वह दिन भी आ सकता है, जबकि वे मेरी तरह हो सकते हैं। इसलिए किसी को

घमंड नहीं करना चाहिए।"

लड़का भिखारी की ओर देखता रह गया। उसने जो कहा था, उसमें कितनी बड़ी सचाई समाई हुई थी। □

३६ / जीने का रास्ता

किसी गाँव के पास एक साँप रहता था। वह बड़ा ही तेज था। जो भी उधर से निकलता, उसपर वह दौड़ पड़ता और उसकी जान ले लेता। सारे गाँव के लोग उससे तंग आ गये। वे उसे रात-दिन कोसते। उन्होंने उधर से निकलना छोड़ दिया। गाँव का वह हिस्सा उजाड़-सा हो गया।

एक दिन एक साधु उस गाँव में आये। लोगों ने उस साँप के उत्पात की बात उन्हें सुनाई।

गाँव वालों की बात सुनकर साधु साँप के पास गये और उसे समझाते हुए कहा, "यह जन्म बार-बार नहीं मिलता। ऐसा जीना किस काम का कि लोग गालियाँ दें!"

साँप ने पूछा, "मैं क्या करूँ?"

साधु बोले, "तुम हमला करना छोड़ दो। सबके साथ प्यार का व्यवहार करो।"

साँप ने उनकी बात मान ली।

उस दिन से वह खुले मैदान में चुपचाप पड़ा रहता। लोगों को यह मालूम हुआ तो उनका डर धीरे-धीरे दूर हो गया और वे उधर से बेधड़क आने-जाने लगे। अब गाँव के बच्चे वहाँ इकट्ठे हो जाते और उसके ईंट-पत्थर मारते, उसके बदन में लकड़ी चुभोते। बेचारा साँप सबकुछ सहन कर लेता।

संयोग से एक दिन वही साधु वहाँ आये। उसकी बुरी हालत देखकर चकित रह गये। पूछा, "अरे, तुम्हें यह क्या हो गया ?"

साँप ने सारा हाल कह सुनाया। सुनकर साधु बोले, "भाई, मैंने तुझे काटने से रोका था, लेकिन फुसकारने से तो मना नहीं किया। जो अपने तेज को प्रकट नहीं करता, उसे कोई जीने देता है ?"

साँप ने अब असली बात समझी। उस दिन से उसने फुसकारना शुरू कर दिया। उसकी फुसकार सुनते ही बच्चे दूर भाग जाते। उन्होंने उसे सताना छोड़ दिया। साँप काटना पहले ही छोड़ चुका था। सब चैन से रहने लगे। □

३७ / अन्तर की ललकार

एक राक्षस था। उसने एक आदमी को अपनी चाकरी में रक्खा। आदमी बड़ा भला था। राक्षस जो भी कहता, वह फ़ौरन् कर देता। लेकिन राक्षस तो राक्षस ठहरा! उसे इतने से ही सन्तोष न होता। बात-बात पर आँखें फाड़कर कहता, "काम में जरा-भी ढील हुई तो मैं तुझे ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगा।"

बेचारा आदमी मारे डर के सहम जाता। एक घड़ी भी चैन से न बैठ पाता। उसके अन्दर आशंका बनी रहती कि कहीं वह दुष्ट उसे मार न डाले। पर वह करता क्या! राक्षस के चंगुल में बुरी तरह फँस गया था।

इसी प्रकार कुछ दिन निकल गये।

एक दिन काम करते-करते वह इतना थक गया कि हाथ हिलाना भी उसके लिए दूभर हो गया। लाचार होकर सुस्ताने

के लिए बैठ गया। राक्षस ने जैसे ही देखा कि चीख उठा, "तूने क्या समझ रक्खा है! मैं तुझे खा जाऊँगा।"

राक्षस की फटकार सुनकर वह डरे कि उसके अन्दर की आत्मा अचानक बड़े जोर से ललकार उठी, "मूर्ख, तू आदमी है। गीदड़ क्यों बन गया है? याद रख, जबतक तू दब्बू बना रहेगा, यह राक्षस शेर बनकर तेरे ऊपर सवार रहेगा।"

इस ललकार को सुनते ही उस आदमी का सोता पौरुष जाग उठा। उसने कठोर आवाज़ में कहा, "तू धमकाता किसे है? खाना है तो आ, ले खाले।"

राक्षस ने उसकी आवाज़ से समझ लिया कि अब धमकी देकर उसे दबाये रखना सम्भव नहीं है और अगर वह उसे खा भी डालेगा तो उस जैसा दूसरा आदमी उसको कहाँ मिलेगा!

उस दिन से राक्षस का सारा व्यवहार बदल गया। खाने की बात फिर उसने कभी अपने मुंह से नहीं निकाली। □

३८ / मूल्यवान भेंट

एक व्यापारी ने अपने व्यापार में ख़ूब कमाई की। उसकी तिजोरियाँ भर गईं। चारों ओर उसका नाम हो गया।

एक दिन उसने एक बहुत ही मूल्यवान् वस्तु खरीदी और उसे ईसा को अर्पित करने चला।

पुलकित मन से वह ईसा के पास पहुँचा और अपनी भेंट आगे करके बोला, "प्रभो, मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिये।"

ईसा ने व्यापारी की ओर देखा, फिर उस वस्तु पर निगाह डाली और नीचे देखने लगे।

उनकी भाव-भंगिमा से व्यापारी का सारा उल्लास नष्ट हो गया। उसने विनम्र शब्दों में कहा, "प्रभो, यह चीज़ बड़ी कीमती है। मैंने बड़ी कठिनाई से जुटाई है। आप इसे ग्रहण करके मुझे उपकृत कीजिये।"

ईसा ने दृष्टि ऊपर उठाकर कहा, "मैं इस भेंट को नहीं ले सकता। तुमने इसे चोरी के पैसे से खरीदा है।"

व्यापारी को काटो तो खून नहीं! विस्मित होकर बोला, "प्रभो, यह आप कैसे कहते हैं? मैंने तो इसे अपनी कमाई के पैसे से ख़रीदा है।"

ईसा ने कहा, "तुम्हारा पड़ोसी भूखा और नंगा हो और तुम्हारी तिजोरी भरी हो तो यह पैसा चोरी का नहीं तो और किसका हो सकता है? तुम अपनी इस भेंट को ले जाओ और इसे बेचकर जो पैसा आवे, उसे भूखों को खाना और नंगों को कपड़ा देने में ख़र्च करो।"

व्यापारी ने अनुनय करते हुए कहा, "प्रभो, मेरे पास अभी बहुत धन है। आप जो आदेश दे रहे हैं, मैं उसका पालन करूँगा, पर इस भेंट को तो आप ले ही लीजिये।"

लेकिन ईसा ने वह भेंट नहीं ली। बोले, "जो ज़रूरत-मंदों की सहायता करता है, वह मुझे सबसे कीमती भेंट देता है। इंसान की सेवा मेरी ही सेवा है।" □

३१ / शान्ति का स्रोत

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास लाखों की सम्पत्ति थी और भरा-पूरा परिवार था। उसे सब तरह की सुख-

सुविधाएँ थीं। फिर भी उसका मन अशान्त रहता था।

जब उसकी हैरानी बहुत बढ़ गई, तो वह एक साधु के पास गया और अपना कष्ट उन्हें बताकर प्रार्थना की कि महाराज, जैसे भी हो, मेरी अशान्ति दूर कीजिये।

साधु ने उनकी बात ध्यान से सुनी और कहा कि अमुक नगर में एक बहुत बड़ा धनिक रहता है, उसके पास जाओ, वह तुम्हें रास्ता बता देगा।

सेठ ने सोचा कि साधु उसे बहका रहे हैं। उसने साधु से कहा, "स्वामीजी, मैं तो आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूँ। आप ही मेरा उद्धार कीजिये।" साधु ने फिर वही बात दोहरा दी।

लाचार होकर सेठ उस नगर की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर वह देखता क्या है कि उस धनपति का कारोबार चारों ओर फैला है। लाखों का व्यापार है और उस आदमी का चेहरा फल की तरह खिला है।

वह एक ओर बैठ गया। इतने में एक आदमी आ गया। उसका मुँह उतरा हुआ था। बोला, "मालिक, हमारा जहाज़ समुद्र में डूब गया। लाखों का नुकसान हो गया।"

उद्योगपति ने मुस्कराकर कहा, "मुनीमजी, इसमें परेशान होने की क्या बात है? व्यापार में ऐसा होता ही रहता है।"

इतना कहकर वह अपने साथी से बात करने लगा।

थोड़ी देर में एक दूसरा आदमी आया। बोला, "सरकार, रुई का दाम चढ़ गया है। हमें लाखों का फायदा हो गया।"

धनिक ने कहा, "मुनीमजी, इसमें खुश होने की क्या बात है? व्यापार में ऐसा होता ही रहता है।"

सेठ को अपनी समस्या का समाधान मिल गया। उसने समझ लिया कि शान्ति का स्रोत वैभव में नहीं, मन की समता में है। □

४० / रुपये की खेती

किसी गाँव में एक किसान रहता था। वह बड़ा ही भला और मेहनती था। उसके दो लड़के थे। वह दोनों को अच्छी सीख देता था। कहता था, 'जो बोओगे, वही काटोगे।'

जब किसान बूढ़ा हुआ तो उसने अपने सारे रुपये और जमीन दोनों लड़कों में बाँट दी। एक दिन किसान मर गया।

बड़ा लड़का चतुर था। उसने बाप के दिये पैसे से बढ़िया बीज खरीदा और खेत को खूब जोतकर बो दिया।

छोटा लड़का बहुत ही भोला था। उसे याद आया कि उसके बाप कहा करते थे, "जो बोओगे, सो काटोगे।" उसने सोचा कि यदि वह रुपयों को बो देगा तो उनकी फसल उगेगी और अनाज की तरह उसका घर रुपयों से भर जायगा।

यह सोचकर उसने सारे रुपये खेत में बो दिये।

बड़े भाई की खेती लहलहाने लगी, लेकिन छोटे भाई के खेत में अंकुर भी नहीं फूटा।

काफी दिन बीत गये तो छोटे भाई को हैरानी होने लगी। मारे हैरानी के वह बहुत ही दुबला हो गया। एक दिन बड़े भाई ने उससे दुबले होने का कारण पूछा तो उसने सारी बात बता दी।

सुनकर बड़ा भाई उसके भोलेपन पर बहुत हँसा। उसने कहा, "पिताजी जो कहते थे, उसका मतलब यह था कि दूसरों के साथ हमेशा भलाई करो। बदले में तुम्हें भी भलाई मिलेगी।"

वह छोटे भाई को साथ लेकर उसके खेत में गया और ढूँढ़-कर रुपये निकलवाये, उनसे बीज ख़रीदवाया और खेती कराई। जब बढ़िया फसल आई, तो भोले भाई ने समझा कि खेत में अनाज ही उगता है। रुपये की फसल तिजोरी में होती है। □

पाँडिचेरी के श्रीअरविन्द आश्रम के एक कक्ष में बैठा जब मैं माताजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था, मेरे मस्तिष्क में विचारों का तूफ़ान उठ रहा था। जिनकी ज्योति से आश्रम का कण-कण आलोकित था, जिनकी दिव्य प्रेरणा देश की परिधि को लाँघकर विश्व के अनेक देशों में व्याप्त थी, उन माताजी से प्रथम साक्षात्कार का वह दुर्लभ अवसर था। मैं अपने विचारों को समेटकर एक शृंखला में बाँधने का जितना प्रयत्न कर रहा था, उतने ही वे अनियन्त्रित हो रहे थे।

थोड़ी ही देर में, निर्धारित समय पर, माताजी ने उस कक्ष में प्रवेश किया। लगा जैसे बिजली कौंध गई। उनके मुखमण्डल पर अपूर्व आभा थी, होंठों पर स्मित का दैवी माधुर्य था और नेत्र अलौकिक प्रेम और वात्सल्य से छलछला रहे थे। उनका अंग-प्रत्यंग चैतन्य से भरा था।

अभिवादन में उठूं कि तबतक वह कुर्सी पर आसीन होकर बड़ी ममता से मेरी ओर देखने लगीं। मैंने चरण छुए और उनके निकट ऐसे बैठ गया, जैसे कोई अबोध बालक अवाक् होकर अपने अभिभावक के आगे बैठ जाता है। मेरा मस्तिष्क एकदम विचार-शून्य हो गया था, वाणी मूक हो गई थी। सोचने की शक्ति ही जैसे कुण्ठित हो गई थी।

माताजी मेरी ओर एकटक देखती रहीं, देखती रहीं, फिर गहरे स्नेह-भाव से पूछा, "आश्रम पहली बार आये हो?"

नहीं जानता, कैसे साहस जुटाकर मैंने कहा, "जी हाँ।"

उसके बाद कुछ ही क्षण में वहाँ के वातावरण को प्रेम और करुणा की उस सजीव मूर्ति ने इतना स्निग्ध बना दिया कि मैं बड़े ही सुखद आनन्द के भाव में खो गया।

उन प्रवास के दौरान और बाद में माताजी से मिलने और बातचीत करने के अनेक प्रसंग आए। उनकी स्मृति आज भी मेरे मन पर अंकित है। पर पहले साक्षात्कार में जो मनोभाव बना, उसकी याद आज भी मेरे रोम-रोम को पुलकित कर देती है। □

४२/ वृद्ध की सीख

एक राजा था। उसे हर घड़ी इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं कोई हमला करके उसे मार न डाले। वह सुरक्षा का उपाय सोचता, लेकिन कुछ भी उसकी समझ में न आता। आखिर एक दिन अचानक एक रास्ता उसे सूझा। एक ऐसा महल बनवाया जाये, जो चारों ओर से बन्द हो। न उसमें रोशनदान हों, न जंगले; न उसमें दरवाजे हों, न खिड़कियाँ। बस एक दरवाजा हो। ऐसे महल पर किसी का भी हमला कारगर नहीं होगा।

इस विचार के आते ही राजा ने काम शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों में मनचाहा महल बनकर तैयार हो गया।

जिसने भी उस महल को देखा, चकित रह गया। उसमें दुश्मन तो क्या, एक परिन्दा तक नहीं आ सकता था। सबने राजा की बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राजा को पूरा भरोसा हो गया कि अब उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

संयोग से एक दिन एक वृद्ध आदमी उस महल को देखने आया। राजा ने बड़े उल्लास से उसे सारा महल दिखाया। लेकिन उस वृद्ध के चेहरे पर उसे खुशी नहीं दिखाई दी। राजा

ने पूछा, "कहो, महल कैसा लगा ?"

वृद्ध ने गम्भीर होकर कहा, "राजन, महल तो अच्छा है, लेकिन आपने एक भूल की है।"

राजा ने विस्मय से पूछा, "क्या ?"

वृद्ध ने कहा, "आपने एक दरवाज़ा रक्खा है। इस दरवाज़े से दुश्मन तो नहीं आ सकता, लेकिन अगर मौत आ गई तब? इस दरवाजे को भी बन्द करके आप भीतर बैठ गये होते, तो शायद पूरी तरह से बचत हो जाती।"

वृद्ध के कथन से राजा की आँखें खुल गईं। उसने समझ लिया कि बन्द महल व्यर्थ है। वह दुश्मन से बच सकता है, मौत से नहीं, जिसके लिए दरवाजे की भी ज़रूरत नहीं है। □

४१ / निर्धन का पैसा

किसी नगर में गंगा के किनारे बैठकर एक भिखारी भीख माँगा करता था। उसके हाथ में एक कटोरा रहता था। जिसे जो देना होता था, कटोरे में डाल देता था।

वर्षों से भिखारी के जीवन का यही क्रम चलता आया था। जाड़ा हो या गर्मी, वर्षा हो या वसन्त, वह बड़े तड़के वहाँ आकर बैठ जाता और जब शाम का अँधेरा होने लगता तो वह उठकर चला जाता। कभी किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि वह कहाँ से आता है और कहाँ जाता है।

लेकिन वह भिखारी दूसरे भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाता नहीं था, दीनता नहीं दिखाता था। कोई सामने आता, तो कटोरा आगे बढ़ा देता, मुँह से कुछ भी याचना नहीं करता था।

एक दिन की बात कि एक आदमी उधर आया। उसकी चाल-ढाल, कपड़े-लत्ते, भारी-भरकम शरीर और गले में पड़ी सोने की जंजीर से उसने समझ लिया कि वह कोई पैसे वाला आदमी है। उसने कटोरा आगे बढ़ा दिया।

उस आदमी ने भिखारी की ओर देखकर ऐसा मुँह बनाया, जैसे कोई कड़वी चीज मुँह में आ गई हो, फिर जेब में हाथ डालकर बड़े अनमने भाव से दस पैसे का सिक्का निकाला और भिखारी के सामने जमीन पर फेंककर आगे बढ़ गया।

वह भिखारी ये हरकतें देख रहा था। उसने आव देखा न ताव, सिक्के को उठा उस आदमी की ओर फेंकते हुए बोला, "यह ले अपनी दौलत। मुझे तुझ जैसे ग़रीब का पैसा नहीं चाहिए।"

उस आदमी के पैर ठिठक गये। उसने एक क्षण भिखारी की आँखों को देखा, उसकी भाव-भंगिमा को देखा। तभी उसे एक धर्म-ग्रन्थ में पढ़ी बात याद आ गई—जिस दान के साथ दान-दाता अपने को नहीं देता, वह दान व्यर्थ है और जिसके पास दिल नहीं है, वह करोड़ों की सम्पत्ति होते हुए भी सबसे गरीब है। □

४४ / समझदारी की बात

एक सेठ था। उसने एक नौकर रक्खा। रख तो लिया, पर उसकी ईमानदारी पर विश्वास नहीं हुआ। उसने उसकी परीक्षा लेनी चाही।

अगले दिन सेठ ने कमरे के फर्श पर एक रुपया डाल दिया। सफाई करते समय नौकर ने देखा। उसने रुपया उठाया और उसी समय सेठ के हवाले कर दिया।

तीसरे दिन वह देखता क्या है कि फ़र्श पर पाँच रुपये का नोट पड़ा है। उसके मन में थोड़ा शक पैदा हुआ। हो न हो, सेठ उसकी नीयत को परख रहा है। बात आयी, पर उसने उसे तूल नहीं दिया। पिछली बार की तरह नोट उठाया और बिना कुछ कहे सेठ को सौंप दिया।

वह घर में काम करता था, पर सेठ की निगाह बराबर उसका पीछा करती रहती थी।

मुश्किल से एक हफ्ता बीता होगा कि एक दिन उसे दस रुपये का नोट फ़र्श पर पड़ा मिला। उसे देखते ही उसके बदन में आग लग गयी। उसने सफाई का काम वहीं छोड़ दिया और नोट को हाथ में लेकर सीधा सेठ के पास पहुँचा। बोला, "लो संभालो अपना नोट और घर में रक्खो अपनी नौकरी ! तुम्हारे पास पैसा है, पर सेठ, यह समझने के लिए कि अविश्वास से विश्वास नहीं पाया जा सकता, पैसे के अलावा कुछ और चाहिए। वह तुम्हारे पास नहीं है। मैं ऐसे घर में काम नहीं कर सकता।"

सेठ उसका मुँह ताकता रह गया। वह कुछ कहता कि उसके पहले ही वह नौजवान घर से बाहर जा चुका था। □

४५ / नया मोड़

किसी देश में एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही अभिमानी था। अपने बराबर किसी को भी नहीं समझता था। कारण, उसका राज्य बड़ा विशाल था। उसका खज़ाना धन से भरा था। उसके पास बहुत बड़ी सेना थी और उसके इर्द-गिर्द नौकर-चाकरों की पल्टन थी, जो हर घड़ी उसका हुक्म बजाती

रहती थी। चापलूस उसके अहंकार को बढ़ावा देते रहते थे।

संयोग से एक दिन एक फकीर राजा के यहाँ आया। उसके चेहरे पर तेज चमक रहा था और आँखों में प्रेम भरा था। उसने राजा की ओर देखा और उसकी भाव-भंगिमा से क्षण-भर में ताड़ गया कि राजा धन-दौलत और सत्ता के मद में चूर है, उसकी भीतर की आँखें बन्द हैं।

अपने स्वभाव के अनुसार राजा ने कड़ककर पूछा, "फकीर, तुझे क्या चाहिए ?"

मुस्कराते हुए फकीर ने जवाब दिया, "राजन, मैं आपसे कुछ लेने नहीं, बल्कि आपको कुछ देने आया हूँ।"

राजा के अभिमान को गहरी चोट लगी। इस भिखमंगे फकीर की इतनी जुर्रत कि मुझ जैसे वैभवशाली और सर्वसत्ताधारी के साथ ऐसा व्यवहार करे ! राजा ने चीखकर कहा, "ऐ फकीर ! छोटे मुंह बड़ी बात करते तुझे शर्म नहीं आती ? जिसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं, वह किसी को क्या देगा ? जो दर-दर की भीख माँगता है, वह राजा की बराबरी क्या करेगा ?"

फकीर राजा की गर्वोक्ति सुनकर हँस पड़ा। बोला, "आप ठीक कहते हैं। आपके पास बहुत कुछ है, जो मेरे पास नहीं है। पर राजन्, अकिंचन के पास भी कुछ होता है, जो दुनिया की माया से अधिक महत्त्व रखता है।"

राजा की आँखों में ख़ून उतर आया। बोला, "अपनी बकवास बन्द करो।"

जैसे किसी रोगी से बात कर रहा हो, फकीर ने बड़े प्यार से कहा, "राजन्, बिना त्याग के भोग बेस्वाद है। वैभव में जब त्याग जुड़ जाता है तो वह महक उठता है। जानते हो, त्याग के आते ही अहंकार मिट जाता है, आसक्ति दूर हो जाती है और अन्दर की आँखें खुल जाती हैं।"

फ़कीर के शब्दों में मानो कोई जादू था। राजा को बोध हुआ। उसका सोया इन्सान जाग उठा, उसने अनुभव किया कि त्यागी के आगे भोगी कितना छोटा है।

उसकी आँखों से अज्ञान का परदा हटते ही उसके जीवन में एक नया मोड़ आ गया। □

४६ / सन्त की ऊँचाई

अबु उस्मान हैरी बड़े ऊँचे दर्जे के सन्त थे। उनका स्वभाव बहुत ही शान्त था। वह सबके साथ प्रेम का व्यवहार करते थे। कभी कोई कड़वी बात कह देता था तो वह बुरा नहीं मानते थे। क्रोध तो उन्हें आता ही नहीं था।

एक दिन वह अपने कुछ शिष्यों के साथ बाजार से गुज़र रहे थे। बाजार में भीड़ अधिक नहीं थी। संयोग से जब वह किसी मकान के निकट पहुँचे तो ऊपर से किसी ने राख फेंकी। वह सन्त के सिर पर आकर गिरी। यह देखकर शिष्य मारे गुस्से के लाल-पीले हो गये। वह उनके गुरु का अपमान था और इसे वह कैसे सहन कर सकते थे!

वे राख फेंकने वाले की खबर लेने के लिए तैयार हो गये। पर सन्त ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने मुस्कराकर कहा, "तुम लोग नाराज क्यों होते हो? जिस आदमी ने ऐसा किया है, उसका तुम्हें उल्टे अहसान मानना चाहिए, जरा सोचो तो कि जो सिर आग फेंकने लायक था, उस पर उसने राख ही फेंकी!"

गुरु की बात सुनकर और उनके चेहरे की मधुर मुस्कान देखकर शिष्यों का गुस्सा काफूर हो गया। उन्होंने समझा कि सन्त बनने के लिए आदमी में कितनी ऊँचाई आवश्यक होती है। □

४७ / सन्त का हृदय

राबिया बड़े ऊंची सन्त थीं। उनका जीवन अत्यन्त सादा, सरल और सात्विक था। उनका हृदय हर घड़ी प्रेम से छलछलाता रहता था और उनका द्वार सबके लिए हमेशा खुला रहता था। कभी कोई भूखा-प्यासा उनके घर से निराश नहीं लौटता था। वह सबकी सेवा किया करती थीं और बदले में कभी किसी से कुछ नहीं चाहती थीं।

एक दिन राबिया क़ुरान का पाठ कर रही थी। उसकी अच्छी-अच्छी बातें पढ़कर उनका मन भीग-भीग आता था। वह सोचने लगती थीं कि इन्सान कैसा है, जो लोभ-लालच में पड़ा रहता है और अपनी जिन्दगी भटकते-भटकते पूरी कर डालता है! नहीं, आदमी के लिए यह शोभा नहीं देता। उसे मन से अच्छी बातें सोचनी चाहिए और हाथों से दूसरों की भलाई के काम करने चाहिए।

राबिया और न जाने क्या-क्या सोच रही थी कि उनकी निगाह अचानक कुरान की एक बात पर गई—अल्लाह से मोहब्बत करो और शैतान से नफ़रत। इस वाक्य को पढ़ते ही राबिया ने पेंसिल हाथ में ली और उसके आखिरी हिस्से को काट दिया।

उनके पास बैठे आदमी ने यह देखकर उनसे कहा, "बहन, आपने यह क्या किया? एक मज़हबी किताब को गन्दा कर दिया!"

राबिया ने कहा, "नहीं, मैंने किताब को गन्दा नहीं किया। अपनी परेशानी दूर की है। इसमें लिखा है शैतान से नफ़रत करो। लेकिन मैं अपने दिल को टटोलती हूँ, तो मुझे उसमें कहीं भी नफ़रत दिखाई नहीं देती। मेरे भाई, अब तुम्हीं बताओ कि शैतान के लिए मैं कहाँ से नफ़रत लाऊँगी?" □

भगवान् बुद्ध की धर्म-सभा में एक व्यक्ति रोज़ जाया करता था और उनके प्रवचन सुना करता था। उसका यह क्रम एक महीने तक चला; लेकिन उसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बुद्ध बार-बार समझाते थे, "लोभ, द्वेष और मोह पाप के मूल हैं। इन्हें त्यागो।" पर वह बेचारा इन बुराइयों से बचना तो दूर, उनमें और फँसता जाता था। बुद्ध कहते थे, "क्रोध करने वाले पर जो क्रोध करता है, उससे अहित होता है; पर जो क्रोध का जवाब क्रोध से नहीं देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है।" पर उस व्यक्ति का उग्र स्वभाव तो उग्रतर होता जा रहा था।

हैरान होकर वह बुद्ध के पास गया और उन्हें प्रणाम-निवेदन करके बोला, "भन्ते ! एक महीने से आपके सुन्दर प्रवचन बराबर सुन रहा हूँ; लेकिन उनका ज़रा भी असर मुझपर नहीं पड़ा।"

बुद्ध ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और कहा, "अच्छा, कहाँ के रहने वाले हो ?"

"श्रावस्ती का।"

"यहाँ राजगृह से श्रावस्ती कितनी दूर है ?"

उसने बता दिया।

"कैसे जाते हो वहाँ ?"

"सवारी से।"

"कितना समय लगता है ?"

"इतना।" उसने हिसाब लगाकर बता दिया।

"ठीक। अब यह बताओ यहाँ बैठे-बैठे राजगृह पहुँच गये।"

"यह कैसे हो सकता है ? वहाँ पहुँचने के लिए तो चलना होगा।"

बुद्ध ने बड़े प्यार से कहा, "तुमने सही कहा। चलने पर ही

मंजिल पर पहुँचा जा सकता है। इसी तरह अच्छी बातों का असर तभी पड़ता है, जब उनपर अमल किया जाय। ज्ञान के अनुसार कर्म न होने पर वह व्यर्थ है।" □

४६ / सच्चा साधु

एक बार एक शिष्य भगवान् बुद्ध के पास गया। प्रणाम-निवेदन करके बोला, "भन्ते, मैं देश में घूमना चाहता हूँ। आपके आशीर्वाद का अभिलाषी हूँ।"

बुद्ध ने कहा, "देश में अच्छे व बुरे, दोनों प्रकार के लोग हैं। बुरे लोग तुम्हारी निन्दा और गालियाँ देंगे, तुम्हें कैसा लगेगा?"

शिष्य ने उत्तर दिया, "मैं समझूंगा कि वे बड़े भले हैं, क्योंकि उन्होंने मुझपर धूल नहीं फेंकी।"

बुद्ध ने कहा, "यदि कुछ लोगों ने धूल भी फेंक दी और थप्पड़ भी मार दिया तो?"

शिष्य ने कहा, "मैं उन्हें भी भला ही मानूंगा, क्योंकि उन्होंने थप्पड़ ही तो मारा, डण्डा तो नहीं मारा।"

"यदि कोई डण्डा मार दे तो?"

"तो भी मैं उसे बुरा नहीं मानूंगा, क्योंकि उसने हथियारों से तो नहीं मारा।" शिष्य ने जवाब दिया।

बुद्ध ने आगे कहा, "देश में डाकू मिल सकते हैं, जो हथियारों से तुम्हारी ख़बर लें।"

"तो क्या हुआ?" शिष्य ने कहा, "मैं उन्हें दयालु ही समझूंगा, क्योंकि उन्होंने मुझे जीवित छोड़ दिया।"

बुद्ध ने कहा, "वे तुम्हें मार भी तो सकते हैं।"

शिष्य बोला, "इसके लिए मैं उनका अहसान ही मानूंगा। यह संसार दुःख स्वरूप है। बहुत दिन जीने से दुःख-ही-दुःख देखना पड़ता है। पर आत्महत्या करना महापाप है। यदि कोई दूसरा मार दे तो उसका उपकार ही होगा।"

शिष्य के उत्तर सुनकर भगवान् बुद्ध को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने कहा, "सच्चा साधु वही है जो किसी भी अवस्था में किसी को बुरा नहीं मानता। जो दूसरों की बुराई नहीं देखता, दूसरों को अच्छा ही समझता है, वही परिव्राजक होने के योग्य है। तुम जाओ और देश में खूब घूमो।" □

५० / साधु का बोध

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास लाखों की सम्पत्ति थी, बहुत बड़ी हवेली थी, नौकर-चाकर थे। फिर भी सेठ को शान्ति नहीं थी।

एक दिन किसी ने उसे बताया कि अमुक नगर में एक साधु रहता है। वह लोगों को ऐसी सिद्धि प्राप्त करा देता है कि उससे मनचाही चीज मिल जाती है।

सेठ उस साधु के पास गया और प्रणाम करके निवेदन किया, "महाराज, मेरे पास पैसे की कमी नहीं है, पर मेरा मन बहुत अशान्त रहता है। आप कुछ ऐसा उपाय कर दीजिए कि मेरी अशान्ति दूर हो जाय।"

सेठ ने सोचा कि साधु कोई तावीज दे देंगे, या और कुछ कर देंगे जिससे उसकी इच्छा पूरी हो जाएगी। लेकिन साधु ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। अगले दिन उसने सेठ को धूप में बिठाये

रक्खा और स्वयं अपनी कुटिया के अन्दर छाया में चैन से बैठा रहा।

मर्मी के दिन थे। सेठ का बुरा हाल हो गया। गुस्सा आया, पर वह उसे चुपचाप पी गया।

दूसरे दिन साधु ने कहा, "आज तुम्हें दिन-भर खाना नहीं मिलेगा।"

मारे भूख के दिन-भर सेठ के पेट में चूहे कूदते रहे, अन्न का एक दाना भी उसके मुंह में नहीं गया। लेकिन उसने देखा कि साधु ने तरह-तरह के पकवान उसी के सामने बड़े आनन्द से खाये।

सेठ सारी रात हैरान रहा। उसे एक क्षण को भी नींद नहीं आई। सोचता रहा, साधु बड़ा स्वार्थी है।

तीसरे दिर सबेरे ही उठकर उसने अपना बिस्तर बाँधा और चलने को तैयार हो गया। तभी साधु उसके सामने आकर खड़े हो गए। बोले, "सेठ, क्या हुआ ?"

सेठ ने कहा, "मैं यहाँ बड़ी आशा लेकर आया था, लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला, उलटे ऐसी मुसीबत उठानी पड़ी, जैसी जीवन में मैंने कभी नहीं उठाई। मैं जा रहा हूँ।"

साधु हँसे। बोले, "मैंने तुझे इतना दिया, पर तूने कुछ नहीं लिया।"

सेठ ने विस्मय से साधु की ओर देखा। बोला, "आपने तो मुझे कुछ नहीं दिया।"

साधु ने कहा, "सेठ, पहले दिन जब मैंने तुझे धूप में बिठाया और स्वयं छाया में बैठा तो मैंने तुझे बताया कि मेरी छाया तेरे काम नहीं आ सकती। मेरी बात तेरी समझ में नहीं आई तो दूसरे दिन मैंने तुझे भूखा रक्खा और स्वयं ख़ूब अच्छी तरह खाना खाया। उससे मैंने तुझे समझाया कि मेरे खा लेने से तेरा पेट नहीं

भर सकता। सेठ, याद रख, मेरी साधना से तुझे सिद्धि नहीं मिलेगी। धन तूने अपने पुरुषार्थ से कमाया है। शान्ति भी तुझे अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगी।"

सेठ की आँखें खुल गईं। अपनी मंज़िल पर पहुँचने का उसे रास्ता मिल गया। साधु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हुआ वह लौट आया। □

५१ / बुढ़िया की बानी

एक साधु किसी स्थान पर अपनी कुटिया बनाकर रहता था। बड़ा रमणीक स्थान था। नदी का किनारा था। घना वन था। साधु को सब प्रकार का आनन्द था।

लेकिन एक कठिनाई थी। जंगल के पशु-पक्षी वहाँ आ जाते थे और आँख बचने पर उसका कुछ-न-कुछ बिगाड़ कर जाते थे। इससे साधु हर घड़ी हैरान रहने लगा।

एक बार वह साधु तीर्थाटन के लिए निकला। अनेक स्थानों पर गया। तीर्थ-दर्शन के साथ-साथ साधु-सन्तों के सत्संग का भी लाभ लिया।

अपनी यात्रा में एक दिन वह एक गाँव से गुजरा। चारों ओर खेत फैले थे, जिनमें अनाज की फसल तैयार खड़ी थी।

अचानक उसने देखा कि एक खेत के मचान पर एक बुढ़िया बैठी फसल की रखवाली कर रही है। लेकिन खेत पर पक्षियों ने हमला बोल रक्खा है।

बुढ़िया के नुकसान की कल्पना करके साधु को बड़ा बुरा लगा। वह बुढ़िया के पास गया और बोला, "माई, तुम यहाँ

बैठी-बैठी क्या करती हो ? चिड़ियाँ तुम्हारे खेत को चुगे जा रही हैं।"

बुढ़िया की आँखें चमक उठीं। वात्सल्य-भरे स्वर में बोली, "भैया, चिड़ियों को भी भगवान् ने पैदा किया है। उनके घर में तो अनाज भरा है नहीं। बेचारी जाने कहाँ से उड़कर यहाँ आई हैं ! फिर भैया, चुगेंगी तो कितना ! उनका पेट ही कितना बड़ा है !"

बुढ़िया एक साँस में सारी बात कह गई। साधु उसके चेहरे को देखता रह गया। उसे अपनी कुटिया याद आई। उसमें आने वाले पशु-पक्षी याद आये। पर आज उसके मन में उनके प्रति कटुता नहीं थी, प्रेम था। बुढ़िया ने उसकी आँखें खोल दी थीं। □

५२ / अपना-पराया

किसी होटल के मालिक ने एक लड़का नौकर रक्खा। उम्र उसकी अधिक नहीं थी। वह बड़ा भला और भोला था। बहुत ही ईमानदार और मेहनती था।

एक दिन वह लड़का शीशे के गिलास धो रहा था। संयोग से एक गिलास उसके हाथ से फिसल गया और फर्श से टकराकर चूर-चूर हो गया।

मालिक ने गिलास के गिरने और टूटने की आवाज सुनी तो दौड़ा हुआ आया और लाल-पीला होकर बोला, "क्यों रे बद-माश, यह क्या हुआ ?"

बेचारा बालक वैसे ही डर रहा था, मालिक की भाव-भंगिमा देखकर उसके रहे-सहे होश भी गायब हो गये। अपने बचाव में

वह कुछ कहे कि उससे पहले ही मालिक ने एक हाथ से कसकर उसका कान उमेठा और दूसरे से तड़ातड़ पाँच-सात चाँटे लगा दिये।

बालक के मुँह से दबी हुई एक चीख निकलने को हुई, पर वह पी गया। और कोई चारा भी तो नहीं था।

मालिक ने दाँत पीसते हुए उसे और उसकी सारी जमात को चुन-चुनकर गालियाँ दीं और जी भरकर कोसा। फिर वह ज्यों ही जाने को मुड़ा कि उसका लड़का आ गया। पिता के तम-तमाए हुए चेहरे को देखकर वह उलटे पैरों लौटने को हुआ कि घबराहट में उसका पैर फिसल गया और प्लेटों की अलमारी पर गिरा। कई कीमती प्लेटें नीचे गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गईं।

पिता ने दौड़कर अपने उस इकलौते बेटे को उठा लिया और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला, "क्यों बेटे, चोट तो नहीं लगी ?"

फिर प्लेटों के टुकड़ों की ओर देखकर बेटे को सान्त्वना देते हुए कहा, "कोई बात नहीं है, ऐसा तो हो ही जाता है।"

कुछ कदम पर खड़े नौकर ने मालिक के चेहरे पर व्याप्त ममता को देखा और अपनी उम्र के उस लड़के पर निगाह डाली। अचानक उसने पाया कि उसके गालों पर पड़ी चाँटों की मार जोर से कसक उठी है और रोकते-रोकते भी उसकी आँखों से आँसुओं की कई बड़ी-बड़ी बूँदें टपक पड़ीं। □

वह सवेरे टहल कर लौटे, तो कुटिया के बाहर एक दीन-हीन व्यक्ति को पड़ा पाया। उसके शरीर से मवाद बह रहा था। वह कुष्ठ रोग से पीड़ित था।

उन महानुभव ने उसे देखा। उस व्यक्ति ने धीमी आवाज में कहा, "मैं आपके दरवाजे पर शान्तिपूर्वक मरने आया हूँ।"

रोगी की हालत से उनका हृदय द्रवित हो उठा। पर उसे प्रश्रय कैसे दें! वह अकेले तो थे नहीं, और भी बहुत-से भाई-बहन साथ में रहते थे।

क्षणभर मन में द्वन्द्व रहा। अनन्तर वह कुटिया में चले गये। गये तो सही, पर अन्तर्द्वन्द्व ने संघर्ष का रूप धारण कर लिया। अन्तर से किसी ने कहा, "तू अपने को सेवक कहता है! इन्सानियत का दावा करता है और दुःखी, बेबस आदमी को ठुकराता है!"

बाहर से किसी ने जवाब दिया, "मेरे लिए तो कोई बात नहीं है, पर दूसरे लोग ऐसे रोगी को रखना पसन्द नहीं करेंगे।"

"ठीक है, तब तू मानव-जाति की सेवा करने का दम्भ छोड़ दे।" अन्तर की आवाज में खीज थी।

संघर्ष और तीखा हुआ और अन्त में निश्चय किया कि व्यक्ति जो सही माने, उसका पालन करे, दूसरों की राजी या नाराज़गी की परवाह न करे। जो आशा लेकर आया है, जीवन के अन्तिम क्षण में शान्ति पाना चाहता है, उसे मायूस कैसे किया जा सकता है।

इस निश्चय के बाद बराबर की कोठरी खाली कराई गई, असाध्य रोगी को उसमें रक्खा गया। इतना ही नहीं, मानवता के उस पुजारी ने अपने हाथ से रोगी के घाव धोये, मवाद साफ़

किया और दवा लगाई। रोगी बराबर वहाँ रहा और परम शान्ति के साथ उसकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

वह महानुभाव थे बापू, जिनके लिए मानव सर्वोपरि था और सेवा जिनके लिए जीवन का चरम लक्ष्य थी। रोगी थे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् परचुरे शास्त्री। □

५४ / प्रेम का अमोघ अस्त्र

कोशल देश में एक बड़ा ही भयंकर डाकू रहता था। उसका नाम था अंगुलिमाल। उसने लोगों को मार-मारकर उनकी अंगुलियों की माला अपने गले में डाल रक्खी थी, इसलिए उसका यह नाम पड़ा।

उन दिनों कोशल में प्रसेनजित राजा राज्य करता था। अंगुलिमाल के आतंक से वह बेहद परेशान था। उसे पकड़ने के लिए उसने पुलिस-सेना तैनात की, अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया, लेकिन अंगुलिमाल उनके हाथ नहीं आया।

एक बार प्रसेनजित पाँच सौ सैनिकों को लेकर अंगुलिमाल को पकड़ने के लिए इधर-उधर दौड़-धूप कर रहा था कि उसे पता चला, भगवान् बुद्ध वहाँ विहार कर रहे हैं। वह उनके पास गया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। बुद्ध ने कहा, "क्या बात है? इतने परेशान क्यों दिखाई दे रहे हो? क्या किसी राजा ने तुम पर हमला कर दिया है?"

प्रसेनजित बोला, "भन्ते, किसी ने हमला नहीं किया है। मेरे राज्य में अंगुलिमाल नाम के डाकू ने तबाही मचा रक्खी है। मैं उसी को पकड़ने की दिन-रात कोशिश कर रहा हूँ।"

बुद्ध ने मुस्कराकर कहा, "वह तुम्हारी पकड़ में नहीं आता ! अच्छा, यह बताओ कि यदि वह धर्मात्मा के रूप में तुम्हारे सामने आए तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उसका स्वागत करूँगा और उसकी सेवा और रक्षा करूँगा।" प्रसेनजित ने कहा।

तब बुद्ध ने पास बैठे व्यक्ति की बाँह पकड़कर उसे राजा के सामने कर दिया। बोले, "यह रहा अंगुलिमाल।"

प्रसेनजित को काटो तो खून नहीं। वह थर-थर काँपने लगा। बुद्ध ने कहा, "राजन्, अब तुम्हें इससे डरने की आवश्यकता नहीं है।"

इसके बाद प्रसेनजित को पता चला कि भगवान् बुद्ध के प्रेम और करुणा के आगे अंगुलिमाल पराभूत हो गया है। उसे नया जन्म मिला है। अपनी खूँखार वृत्तियों को देखकर वह भिक्षु बन गया है।

प्रसेनजित की आँखें खुल गईं। एक शासक के नाते वह माने बैठा था कि सैन्य और शस्त्र-बल से बढ़कर और कोई बल नहीं है। आज उसे मालूम हुआ कि प्रेम का मुक़ाबला दुनिया में कोई ताकत नहीं कर सकती।

उसने अंगुलिमाल का बड़े प्रेम से अभिवादन किया और उससे कहा, "मैं तुम्हारे भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था किये देता हूँ।"

अत्यन्त विनम्र भाव से अंगुलिमाल बोला, "राजन्, आप चिन्ता न करें, मुझे सबकुछ मिल गया है।"

प्रसेनजित की आँखें डबडबा आईं और वह श्रद्धा से अवनत होकर वहाँ से चला गया। □

५५ / समर्पण का फल

मुस्लिम सन्तों में एक बहुत बड़ी सन्त हुई हैं राबिया। उनमें ईश्वर-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। वह हर घड़ी प्रभु के चरणों में लौ लगाये रहती थीं। सबको उसी का बन्दा मानकर उन्हें प्यार करती थीं और जी-जान से उनकी सेवा करती थीं।

एक रात को जब वह सो रही थीं, उनके घर में एक चोर घुस आया। सामने एक चादर रक्खी थी। चोर ने उसी को उठा लिया। लेकिन जैसे ही वह चलने को हुआ कि उसका सिर चकराने लगा, बदन काँपने लगा और आँखों के सामने अँधेरा छा गया। रास्ता दीखना बन्द हो गया।

उसने आँखें मलीं, पर कोई नतीजा नहीं निकला। वह वहीं बैठ गया और चादर को एक ओर रखकर जैसे ही अपना सिर थपथपाने को हुआ कि उसके चक्कर एकदम दूर हो गये, आँखें ठीक हो गईं और सामने दरवाजा दिखाई देने लगा।

चोर उठा, पर ज्योंही उसने चादर हाथ में ली कि उसकी हालत फिर पहले की तरह हो गई। मारे घबराहट के उसने चादर पटक दी। पटकते ही एक क्षण में वह स्वस्थ हो गया। उसने कई बार चादर उठाई और हर बार ऐसा ही हुआ।

जब वह असमंजस में खड़ा था और उसे कुछ सूझ नहीं रहा था तभी कहीं से आवाज आई, "तू अपने को क्यों परेशानी में डाल रहा है। मुद्दत हुई, राबिया ने अपने को मेरे सिपुर्द कर दिया है। जब एक दोस्त सोता है, तब एक जागता है। यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि उसकी चीज को कोई चुराकर ले जाय?"

चोर ने सोती राबिया के आगे सिर झुकाया और चादर वहीं छोड़कर घर से बाहर निकल गया। वह खाली हाथ आया था, पर अब उसके हाथ में बहुत बड़ी सम्पदा थी। □

५६ / कठोरता में कोमलता

किसी जगह डाकुओं का एक दल था। उस दल का सरदार बड़ा खूंखार था। चारों ओर उसका इतना आतंक था कि लोग उसके नाम से थर-थर काँपते थे। एक दिन उसने अपने एक साथी को आदेश दिया कि वह अमुक दिन अमुक जगह पर मिले।

जिस दिन साथी को जाना था, उससे एक दिन पहले उसकी पत्नी बहुत बीमार हो गई। पर सरदार की आज्ञा तो पत्थर की लकीर थी। उसे कौन टाल सकता था! स्त्री को बुरी हालत में छोड़कर वह नियत दिन नियत स्थान पर पहुँच गया।

सरदार वहाँ पहले से ही मौजूद था। साथी के चेहरे पर उदासी देख उसने पूछा, "क्यों, क्या बात है ? उदास क्यों हो ?"

साथी ने सारी बात बता दी। सुनकर सरदार बोला, "अच्छा हुआ, तुम आ गये। लो यह सोना, इसे अमुक जगह अमुक आदमी को दे आओ। और देखो, काम खतरे का है। पकड़े भी गये तो घबराना मत। जाओ।"

सरदार ने सोना देकर साथी को विदा किया। उसके बाद पत्थर जैसे दिल वाला वह आदमी सीधा डॉक्टर के पास गया, उसे साथ ले जाकर साथी की रुग्ण पत्नी को दिखाया और उसकी चिकित्सा की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की। जबतक वह ठीक नहीं हो गई, सरदार ने चैन नहीं लिया।

संयोग से सोना देते समय साथी पकड़ा गया। उस पर मुकदमा चला और उसे तीन साल के कठोर कारावास का दण्ड मिला।

इसका पता चलते ही सरदार साथी की पत्नी के पास गया और गीली आँखों से वह दुःखद समाचार सुनाते हुए बोला, "बहन, तुम परेशान मत होना। जबतक तुम्हारा आदमी

छूटकर नहीं आवेगा, तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की देखभाल की सारी जिम्मेदारी हमारी होगी।"

इतना कहकर सरदार ने उनके लिए वे सब सुविधाएँ जुटा दीं, जो उन्हें पहले कभी नहीं मिली थीं। जबतक साथी दण्ड की अवधि पूरी करके नहीं आया, सरदार उनका उसी ममता से भरण-पोषण करता रहा, जिस ममता से वह अपने परिवार का करता था।

लोगों ने अनुभव किया कि पत्थर से कठोर दिल में भी फूल की-सी कोमलता होती है। □

५७ / रोना क्यों

सूफी-सन्तों में राबिया का स्थान बहुत ऊँचा था। वह बड़ी सादगी का जीवन बिताती थीं और सबको बेहद प्यार करती थीं। ईश्वर में उनकी अगाध श्रद्धा थी। अपना सबकुछ उन्हीं को सौंप रक्खा था।

एक दिन एक व्यक्ति राबिया के पास आया। उसके सिर पर पट्टी बँधी थी। राबिया ने पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है ? यह पट्टी क्यों बाँध रक्खी है ?"

वह आदमी बोला, "सिर में बड़ा दर्द है।"

राबिया ने पूछा, "तुम्हारी कितनी उम्र है ?"

उत्तर मिला, "यही कोई तीसेक साल की है।"

"अच्छा यह बताओ," राबिया ने आगे सवाल किया, "इन तीस वर्षों में तुम तन्दुरुस्त रहे या बीमार ?"

उसने कहा, "मैं तन्दुरुस्त रहा। बीमार नहीं पड़ा।"

तब राबिया मुस्कराकर बोली, "भले आदमी, तुम इतने साल तन्दुरुस्त रहे, पर तुमने एक दिन इसके शुकराने में पट्टी नहीं बाँधी, और अब जरा सिर में दर्द हो गया तो शिकायत की पट्टी बांध ली !"

राबिया की बात सुनकर वह आदमी बहुत शर्मिन्दा हुआ और सिर झुकाकर चला गया। □

५८ / सदा नहीं रहते

किसी नगर में एक सेठ रहता था। वह बड़ा ही उदार और परोपकारी था। उसके दरवाजे पर जो भी आता, उसकी वह दिल खोलकर मदद करता।

एक दिन उसके यहाँ एक आदमी आया। उसके हाथ में एक परचा था, जिसे वह बेचना चाहता था। उसके परचे पर लिखा था—'सदा न रहे !' इस परचे को कौन खरीदता ! लेकिन सेठ ने उसे तत्काल ले लिया और अपनी पगड़ी के छोर में बांध लिया।

नगर के कुछ लोग सेठ से ईर्ष्या करते थे। उन्होंने एक दिन राजा के पास जाकर उसकी शिकायत की और राजा ने सेठ को पकड़वाकर जेल में डलवा दिया।

जेल में काफ़ी दिन निकल गये। सेठ बहुत दुखी था। क्या करे, उसकी समझ में कुछ नहीं आता था !

एक दिन अकस्मात् सेठ का हाथ पगड़ी की गाँठ पर पड़ गया। उसने गाँठ को खोलकर परचा निकाला। पढ़ा। पढ़ते ही उसकी आँखें खुल गईं। उसने मन-ही-मन कहा, "अरे, तो दु:ख

किस बात का ! जब सुख के दिन सदा न रहे तो दुःख के दिन भी सदा नहीं रहेंगे।"

इस विचार के आते ही वह जोर से हँस पड़ा और देर तक हँसता रहा। चौकीदार ने उसकी हँसी सुनी तो उसे लगा, सेठ मारे दुःख के पागल हो गया है ! उसने राजा को खबर दी। राजा आया। सेठ से पूछा, "क्या बात है ?" सेठ ने सारी बात बता दी। उसने कहा, "राजन्, आदमी दुःखी क्यों हो ? सुख-दुःख के दिन तो सदा बदलते रहते हैं।"

सुनकर राजा को बोध हो गया। उसने सेठ को जेल से निकलवाकर उसके घर भिजवा दिया। सेठ आनन्द से रहने लगा। □

५९ / चलता-फिरता फरिश्ता

उन दिनों की बात है, जबकि चम्पारन में किसानों का सत्याग्रह चल रहा था। गांधीजी की उस सेना में सभी प्रकार के सैनिक थे। जिनमें आत्मिक बल था, वे उस लड़ाई में शामिल हो सकते थे। सत्याग्रहियों में कुष्ठ रोग से पीड़ित एक खेतिहर मजदूर भी था। उसके शरीर में घाव थे। वह उन पर कपड़ा लपेटकर चलता था।

एक दिन शाम को सत्याग्रही अपनी छावनी को लौट रहे थे, पर बेचारे कुष्ठी से चला नहीं जाता था। उसके पैरों पर बँधे कपड़े कहीं गिर गये थे। घावों से खून बह रहा था। सब लोग आश्रम में पहुँच गये। बस, एक वही व्यक्ति रह गया।

प्रार्थना का समय हुआ। गांधीजी ने निगाह उठाकर अपने

चारों ओर बैठे सत्याग्रहियों को देखा, पर उन्हें वह महारोगी नहीं दिखाई दिया। उन्होंने पूछताछ की तो पता चला कि लौटते में वह पिछड़ गया था।

यह सुनकर गांधीजी तत्काल उठ खड़े हुए और हाथ में बत्ती लेकर उसकी तलाश में निकल पड़े। चलते-चलते उन्होंने देखा कि रास्ते में एक पेड़ के नीचे एक आदमी बैठा है। दूर से ही गांधीजी को पहचानकर वह चिल्लाया, "बापू !"

उसके पास जाकर गांधीजी ने बड़ी व्यथा के साथ कहा, "अरे भाई, तुमसे चला नहीं जाता था तो मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

तभी उनका ध्यान उसके पैरों पर गया। वे खून से लथपथ थे। गांधीजी ने झट अपनी चादर को फाड़कर उसके पैरों पर कपड़ा लपेट दिया और उसे सहारा देकर धीरे-धीरे आश्रम में ले आये, उसके पैर धोये और फिर प्यार से अपने पास बिठाकर उन्होंने प्रार्थना की।

अपने धर्म-ग्रन्थों में हम फरिश्तों की कहानियाँ पढ़ते हैं, जो संकट में फँसे लोगों की सहायता के लिए दौड़े चले आते थे। इससे बढ़कर हमारा सौभाग्य और क्या हो सकता है कि एक ऐसा ही चलता-फिरता फरिश्ता वर्षों तक हमारे बीच रहा। □

६० / माँ ! मैं संन्यासी बनूँगा

लगभग बारह सौ साल पहले की बात है। मलाबार में एक बहुत बड़े सन्त हुए। उनका नाम था शंकर। बचपन से ही उनमें वैराग्य की भावना थी। वे संन्यासी बनना चाहते थे, पर उनकी माँ इसके लिए किसी भी हालत में राजी नहीं होती थी। माँ की

ममता जो ठहरी ! वह चाहती थी कि उसका बेटा उसकी आँखों के सामने रहे और बुढ़ापे में उसे सहारा दे।

एक दिन शंकर अपनी माँ के साथ नदी में नहाने गये। जैसे ही वह पानी में घुसे, एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। वे चिल्लाये, "माँ, मगर ने मेरा पैर पकड़ लिया है। मैं अब क्या करूँ ?"

माँ को काटो तो खून नहीं ! वह बेचारी क्या करे ! उसने घबराकर लोगों को पुकारा। लोग आयें, इससे पहले उसने सुना, लड़का कह रहा था, "माँ ! ओ माँ ! मैं मर रहा हूँ। कम-से-कम मुझे संन्यासी होकर तो मरने दो !"

माँ काँप उठी। उसके अन्दर तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। एक ओर बेटे की अन्तिम इच्छा थी, दूसरी ओर माँ की ममता। वह क्या करे ? मौत के मुँह में पड़े बेटे की इच्छा को क्या पूरी न होने दे ? पर सोचने का समय कहाँ था ? उसने दिल कड़ा किया और झट उन्हें संन्यासी होने की अनुमति दे दी।

इसके बाद जिसकी आशा नहीं थी, वह हो गया। शंकर ने जोर लगाया और संयोग देखो कि उनका पैर मगर के चंगुल से छूट गया।

वे बाहर निकले। माँ के जैसे खोये प्राण लौट आये। पर बेटे को संन्यासी होने की अनुमति मिल चुकी थी। माँ के सामने अब कोई चारा न था।

यही शंकर आगे चलकर आदि शंकराचार्य बने, जिन्होंने सारे देश में धर्म का डंका बजाया और इतिहास में उनका नाम अमर हो गया। □

६१ / गांधीजी का दर्द

गांधीजी का जन्म-दिन बड़ी सादगी के साथ मनाया जाता था। एक बार सेवाग्राम में जब उनका जन्म-दिन मनाया गया तो आश्रम के भाई-बहनों के अलावा इधर-उधर के भी काफ़ी लोग जमा हो गये।

गांधीजी समय पर प्रार्थना-सभा में आये तो देखते क्या हैं, उनके सामने घी का दीया जल रहा है। बात नई थी। गांधीजी उस ओर कुछ क्षण देखते रहे। उसके बाद प्रार्थना शुरू हो गई।

प्रार्थना समाप्त होने पर गांधीजी का प्रवचन आरम्भ हुआ। सबलोग शान्त होकर उनकी ओर देखने लगे। गांधीजी ने बड़े गम्भीर स्वर में पूछा, "यह दीया कौन लाया है?"

पास बैठी बा ने कहा, "मैं लाई हूँ।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "कहाँ से लाई हो?"

"गाँव से," बा बोलीं, "आज आपकी वर्षगाँठ है न!"

गांधीजी ने गहरी व्यथा के साथ कहा, "आज अगर कोई सबसे बुरा काम हुआ है तो यह कि बा ने घी का दीया जलाया। आज मेरी वर्षगाँठ है, इसलिए ऐसा किया गया है। आसपास के गाँवों में लोग कैसे रहते और जीते हैं, यह मैं रोज देखता हूँ। उन बेचारों को ज्वार-बाजरे की सूखी रोटी पर चुपड़ने के लिए तेल तक नहीं मिलता, और आज यहाँ मेरे आश्रम में घी का दीया जल रहा है! बेचारे ग़रीब किसानों को जो चीज नसीब न हो, उसे हम इस तरह कैसे बरबाद कर सकते हैं?"

कहते-कहते उनका दर्द इतना उभरा कि उनकी आँखें गीली हो आईं। उनकी वे गीली आँखें आज भी सूखी नहीं हैं और उनका वह दर्द तो आज और भी बढ़ गया है। □

किसी क़स्बे में दो आदमी रहते थे। एक का नाम था प्रेम, दूसरे का नाम विनय। दोनों के घर आमने-सामने थे।

एक दिन संयोग से किसी बात पर उनमें तनातनी हो गई। बात छोटी-सी थी; लेकिन बढ़ गई। दोनों ही बेहद उत्तेजित हो उठे। प्रेम आपे से बाहर हो गया। बोला, "शैतान के बच्चे, तेरी अकल घास चरने चली गई है।"

इतना सुनना था कि विनय दाँत पीसकर बोला, "तूने मेरे बाप को गाली दी है! तेरी इतनी हिम्मत!"

वह सपाटे से अपने घर में गया और सामने लटकी तलवार लेकर प्रेम पर वार किया। प्रेम ने वार रोकने की कोशिश की तो तलवार उसके हाथ में लग गई। घाव हो गया। खून बहने लगा। तभी मोहल्ले के लोगों ने बीच-बचाव कर दिया। दोनों अपने-अपने घर चले गये।

कुछ दिन बीत गये। प्रेम के हाथ का घाव अच्छा हो गया। वह उस घटना को भूल गया। पर विनय का मन साफ़ नहीं हुआ। वह जैसे ही प्रेम को देखता, मुँह फेरकर निकल जाता।

एक दिन वे दोनों आमने-सामने हो गये। जब विनय बचकर जाने लगा तो प्रेम ने जी कड़ा करके उसका हाथ पकड़ लिया। कहा, "क्यों, क्या बात है? यह देखो, मेरा घाव अच्छा हो गया।"

इतना कहकर उसने अपना हाथ विनय के आगे कर दिया।

विनय ने उसे देखा नहीं। दूसरी ओर को मुँह करके कहा, "तलवार का घाव भर जाता है पर बात का घाव कभी नहीं भरता। वह हमेशा टीसता रहता है।"

प्रेम की आँखें डबडबा आईं। बोला, "लेकिन जो सच्चे हृदय

से अपनी भूल स्वीकार कर लेता है, उसे क्षमा मिलनी चाहिए।"

विनय ने हाथ छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन प्रेम ने नहीं छोड़ा। अन्तर के आवेग से उसका हाथ काँप रहा था। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

विनय का तनाव ढीला हो गया। प्रेम के हृदय की निर्मलता ने उसके भीतर की गाँठ को खोल दिया। उसने अनुभव किया कि घाव तलवार का हो या बात का, वह असाध्य अन्दर के विष से बनता है। अन्तर की स्वच्छता से बढ़कर और कुछ नहीं है। □

६३ / साधु का नुस्खा

किसी नगर में एक आदमी रहता था। उसने परदेस के साथ व्यापार किया। मेहनत फली, कमाई हुई और उसकी गिनती सेठों में होने लगी। महल जैसी हवेली बन गई। वैभव और बड़े परिवार के बीच उसकी जवानी बड़े आनन्द से बीतने लगी।

एक दिन उसका एक सम्बन्धी किसी दूसरे नगर से आया। बातचीत के बीच उसने बताया कि उसके यहाँ का सबसे बड़ा सेठ गुजर गया। बेचारे की लाखों की धन-सम्पत्ति योंही पड़ी रह गई।

बात सहज भाव से कही गई थी, पर उस आदमी के मन को डगमगा गई। हाँ, उस सेठ की तरह एक दिन वह भी तो मर जायगा।

उसी क्षण से उसे बार-बार मौत की याद सताने लगी। हाय, मौत आवेगी, उसे ले जायगी और सबकुछ यहीं छूट जायगा!

मारे चिन्ता के उसकी देह सूखने लगी। देखने वाले देखते

कि उसे किसी चीज की कमी नहीं है, पर उसके भीतर का दुःख ऐसा था कि किसी से कहा भी नहीं जा सकता था।

धीरे-धीरे वह बिस्तर पर पड़ गया। बहुतेरा इलाज किया गया, लेकिन उसका रोग कम होने की बजाय बढ़ता ही गया।

एक दिन एक साधु उसके घर पर आया। उस आदमी ने बेबसी से उसके पैर पकड़ लिये और रो-रोकर अपनी व्यथा उसे बता दी।

सुनकर साधु हँस पड़ा। बोला, "तुम्हारे रोग का इलाज तो बहुत आसान है।"

उस आदमी के खोये प्राण मानो लौट आये। अधीर होकर उसने पूछा, "स्वामीजी, वह इलाज क्या है!"

साधु ने कहा, "देखो, मौत का विचार जब मन में आवे, जोर से कहो, जबतक मौत नहीं आवेगी, मैं जीऊँगा। इस नुस्खे को सात दिन तक आजमाओ, मैं अगले सप्ताह आऊँगा।"

सात दिन के बाद साधु आये तो देखते क्या हैं, वह आदमी बीमारी के चंगुल से बाहर आ गया है और आनन्द से गीत गा रहा है।

साधु को देखकर वह दौड़ा और उसके चरणों में गिरकर बोला, "महाराज, आपने मुझे बचा लिया। आपकी दवा ने मुझ पर जादू का-सा असर किया। मैंने समझ लिया कि जिस दिन मौत आवेगी, उसी दिन मरूँगा, उससे पहले नहीं।"

साधु ने कहा, "वत्स, मौत का डर सबसे बड़ा डर है। वह जितनों को मारता है, मौत उतनों को नहीं मारती।" □

६४ / सांच को आंच नहीं

किसी नगर में एक जुलाहा रहता था। वह बहुत बढ़िया कम्बल तैयार करता था। कत्तिनों से अच्छी ऊन खरीदता और भक्ति के गीत गाते हुए आनन्द से कम्बल बुनता। वह सच्चा था, इसलिए उसका धन्धा भी सच्चा था। रत्तीभर भी कहीं खोट-कसर नहीं थी।

एक बार उसने एक साहूकार को दो कम्बल दिये। साहूकार ने दो दिन बाद उनका पैसा ले जाने को कहा।

साहूकार दिखाने को तो धरम-करम करता था, माथे पर तिलक लगाता था; लेकिन मन उसका मैला था। अपना रोजगार छल-कपट से चलाता था।

दो दिन बाद जब जुलाहा अपना पैसा लेने आया तो साहूकार ने कहा, "मेरे यहाँ आग लग गई और उसमें दोनों कम्बल जल गये। अब मैं पैसा क्यों दूं ?"

जुलाहा बोला, "यह हो नहीं सकता। मेरा धन्धा सच्चाई पर चलता है और सच में कभी आग नहीं लग सकती।"

उसके कन्धे पर एक कम्बल पड़ा था। उसे सामने करते हुए उसने कहा, "यह लो ! लगाओ इसमें आग।"

साहूकार बोला, "मेरे यहाँ कम्बलों के पास मिट्टी का तेल रक्खा था। कम्बल उसमें भीग गये थे। इससे जल गये।"

जुलाहे ने कहा, "तो इसे भी मिट्टी के तेल में भिगो लो।"

काफी लोग वहाँ इकट्ठे हो गये थे। सबके सामने कम्बल को मिट्टी के तेल में भिगोकर आग लगा दी गई।

लोगों ने देखा कि तेल जल गया; लेकिन कम्बल जैसे-का-तैसा बना रहा।

जुलाहे ने कहा, "याद रखो, साँच को आँच नहीं।"

साहूकार ने लज्जा से सिर झुका लिया और जुलाहे के पैसे चुका दिये। □

६५ / मोह नहीं, प्रेम

एक महात्मा थे। वह हिमालय में रहते थे। उन्होंने सबकुछ त्याग दिया था, यहाँ तक कि अपने अंग पर एक वस्त्र तक नहीं रक्खा था। निर्जन स्थान में प्रभु का ध्यान करते रहते थे। दर्शनार्थी आ जाते थे तो उन्हें उपदेश दे दिया करते थे।

एक दिन पढ़े-लिखे लोगों की एक टोली उनके पास पहुँची। उन्होंने कहा, "महाराज, हम दुनिया को नहीं छोड़ना चाहते। उसी में रहकर आत्मिक उन्नति करना चाहते हैं। कोई उपाय बताइये।"

स्वामीजी ने उनपर एक निगाह डाली। बोले, "नहीं, दुनिया में रहकर आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती। दुनिया के मोह-माया में लोग फँस जाते हैं और उनकी आत्मा पर पर्दा पड़ जाता है। तब आत्मा की साधना कैसे हो सकती है?"

फिर इधर-उधर की और बातें होती रहीं। पता चला कि स्वामीजी ने छोटी उम्र में ही घर-बार छोड़कर संन्यास ले लिया था। देश के बहुत-से तीर्थों में घूमे और अब अनेक वर्षों से वहाँ थे। इस बातचीत के बाद स्वामीजी ने पूछा, "आप लोग यहाँ कबतक हैं?"

उस टोली के एक सदस्य के यह कहने पर कि तीन-चार दिन रहेंगे, स्वामीजो बोले, "गोमुख जाओगे? जाओ तो रास्ते में मेरा एक शिष्य रहता है। उससे अवश्य मिल लेना। बड़ा विद्वान् है।

बड़ा मेधावी है। उम्र कुछ भी नहीं है, पर वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत सबकुछ पढ़ डाला है। पहले यहीं मेरे साथ रहता था। बड़ा सहारा था उसका। लेकिन पता नहीं, एक दिन उसे क्या सूझा कि यहाँ से चला गया और अब बिल्कुल सुनसान-बियाबान जगह में अकेला रहता है। जबतक मेरे शरीर में दम था, उसके लिए खाने-पीने की चीज़ें पहुँचा देता था, पर अब मेरे लिए चलना-फिरना कठिन हो गया है। भगवान् जाने, उसका काम कैसे चलता होगा!"

कहते-कहते स्वामीजी इतने विह्वल हो गये कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। गला रुँध गया।

टोली में से एक ने यह देखकर कहा, "महाराज, अभी तो आप हमें उपदेश दे रहे थे कि मोह को छोड़े बिना आदमी की उन्नति नहीं हो सकती, पर आप स्वयं मोहग्रस्त हो रहे हैं!"

स्वामीजी ने सिर उठाया, बोले, "अरे, मेरे ये आँसू मोह के नहीं हैं, प्रेम के हैं। देखो, मोह और प्रेम में बड़ा अन्तर है। मोह फँसाता है, प्रेम उबारता है। पर तुम लोग इस अन्तर को नहीं समझोगे।"

सचमुच उस अन्तर को समझना आसान नहीं था। उससे भी मुश्किल उसे जीवन में उतारना था। □

६६ / हाथों का प्रयोजन

एक साधु था। वह नदी के किनारे कुटिया बनाकर रहता था। सांसारिक बन्धनों को तिलांजलि देकर वह एकाग्र भाव से ईश्वराधना में डूबा रहता था।

एक दिन अकस्मात् उसके मन में विचार आया कि जब भगवान् सबका नियन्ता है तो आदमी को कर्म क्यों करना चाहिए। वैसे भी, आदमी के कोई काम करने पर उसके अन्दर कर्त्तापन का अहंकार पैदा होता है और अहंकार कैसा भी हो, व्यक्ति को नीचे गिराता है।

यह सोचकर उसने अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द कर लीं और अपने को पूर्णतया प्रभु की मर्जी पर छोड़ दिया। वह नदी के किनारे चट्टान पर जा बैठा और प्रभु के ध्यान में लीन हो गया।

कुछ दिन बीत गये। आसपास के लोगों ने देखा कि साधु ने इतने दिनों से न कुछ खाया है, न पिया है तो वह उसके लिए खाना ले आये, पर वह खाता कैसे ? उसकी मुट्ठियाँ जो बँधी थीं। लोगों ने इस कठिनाई को समझकर उसे स्वयं खाना खिला दिया।

साधु को प्यास लगी। वह नदी की धारा के निकट गया। और ज्यों ही चौपाये की भाँति झुककर पानी पीने को हुआ कि उसके पैर उखड़ गये और पानी में बहने लगा, पर मुट्ठियाँ उसने तब भी नहीं खोलीं।

पानी में डूबते-उतराते वह बेहाल हो गया और चट्टानों से टकराने के कारण उसका बदन लहूलुहान हो गया। उसकी चेतना जाती रही।

होश आया तो उसने पाया कि वह नदी के किनारे पड़ा है। शरीर इतना अशक्त हो गया था कि उसके लिए आँखें खोलना भी कठिन हो गया।

तभी कहीं से आवाज़ आई, "ओ मूर्ख, तू बड़ा अज्ञानी है। तूने कर्म से मुँह मोड़ लिया, लेकिन यह नहीं सोचा कि अगर ईश्वर की यही इच्छा थी कि आदमी कुछ भी काम न करे तो

उसने उसे दो हाथ क्यों दिये ? हाथ कर्म करने के लिए हैं और जो उनका इस्तेमाल नहीं करता, वह चोरी करता है।"

साधु ने अपनी भूल अनुभव की। उसने मुट्ठियाँ खोल दीं, और उस दिन से पहले की तरह कर्ममय जीवन व्यतीत करने लगा। □

६७ / अपंग कौन ?

किसी नगर में एक सेठ रहते थे। उनके पास अपार सम्पत्ति थी, लम्बी-चौड़ी हवेली थी, नौकर-चाकरों की सेना थी, भरा-पूरा परिवार था। सब तरह के सुख थे। पर एक दु:ख था। सेठ को रात को नींद नहीं आती थी। कभी आँख लग भी जाती तो भयंकर सपने आते। सेठ को बड़ी बेचैनी रहती।

उन्होंने बहुतेरा इलाज कराया, लेकिन रोग घटने के बजाय बढ़ता ही गया।

एक दिन एक साधु उस नगर में आये। बहुत पहुँचे हुए थे। लोगों के दु:ख दूर करते थे।

सेठ को पता लगा तो वह भी उनके पास गये और अपनी विपदा उन्हें कह सुनाई। बोले, "महाराज, जैसे भी हो मेरा कष्ट दूर कर दीजिए।"

साधु ने कहा, "सेठजी, आपके रोग का एक ही कारण है और वह यह कि आप अपंग हैं।"

सेठ ने विस्मय से उनकी ओर देखा। पूछा, "आप मुझे अपंग कैसे कह सकते हैं ? यह देखिए, मेरे अच्छे-खासे हाथ-पैर हैं।"

साधु ने हँसकर कहा, "अपंग वह नहीं होता, जिसके हाथ-

पैर नहीं होते। वास्तव में अपंग तो वह है, जो हाथ-पैर होते हुए भी उनका इस्तेमाल नहीं करता। बोलो, शरीर से तुम कितना काम करते हो ?"

सेठ क्या जवाब देते ! वह तो हर छोटे-बड़े काम के लिए नौकर पर निर्भर करते थे।

साधु ने कहा, "अगर तुम अपने रोग से बचना चाहते हो तो हाथ-पैर की इतनी मेहनत करो कि थककर चूर हो जाओ। तुम्हारी बीमारी दो दिन में दूर हो जायगी।"

सेठ ने यही किया। साधु की बात सही निकली। दूसरे दिन रात को सेठ को इतनी गहरी नींद आई कि वह चकित रह गये।□

६८ / देश-भक्ति के वे दिन

आज़ादी की लड़ाई के दिनों की बात है। विदेशी शासन की ग़ुलामी के जुए को कंधे से उतार फेंकने के लिए प्रत्येक भारत-वासी अपना सबकुछ निछावर करने को कमर कसकर खड़ा हो गया था। देश-भक्ति से भारतवासियों के हृदय ओत-प्रोत हो रहे थे। मातृभूमि से बढ़कर उनके लिए और कुछ भी नहीं था।

इस लोक-चेतना को दबाने के लिए सरकार का दमन-चक्र तेजी से चल पड़ा। उसने निरीह लोगों पर लाठियाँ बरसाईं; उन्हें पकड़-पकड़कर जेलों में ठूंस दिया और उनको ऐसी-ऐसी यातनाएँ दीं कि जिनका हाल पढ़कर आज भी रोमांच हो आता है। लेकिन उसका यह दमन-चक्र असंख्य देशभक्तों की आत्मा को नहीं कुचल सका, उलटे उसने आग में घी का काम किया।

उन्हीं दिनों की घटना है। बिहार के एक नगर में कुछ युवकों

और युवतियों ने सरकारी सचिवालय पर अपना तिरंगा झण्डा फहराने का निश्चय किया। आगे-आगे बहनें, पीछे-पीछे युवक। उस टोली का नेतृत्व कर रही थी एक तेरह-चौदह वर्षीय बालिका, जिसके हाथ में राष्ट्रीय झण्डा था।

टोली आगे बढ़ी, पुलिस अधिकारी ने ललकारा, "खबरदार! अगर एक क़दम भी आगे बढ़ाया तो हम गोली से उड़ा देंगे।"

पर वह जमाना ही कुछ और था। उस ललकार ने जोश को कई गुना बढ़ा दिया। 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' के नारों से आसमान गूंज उठा। देश पर मर-मिटने की लालसा से भरे उन सपूतों के पैरों में और गति आ गई।

टोली आगे बढ़ती गई। पुलिस के अधिकारी ने निशाना साधा और झण्डा लेकर चल रही बालिका पर गोली दाग दी। गोली उसके सीने में लगी; लेकिन वह गिरे और झण्डा नीचा हो कि दूसरी लड़की ने झण्डे को हाथ में ले लिया और आगे बढ़ चली। □

६९ / क्रोध को जीतने का सहज उपाय

भूदान-यज्ञ के दिनों की बात है। विनोबाजी की पद-यात्रा उत्तर प्रदेश में चल रही थी। उनके साथ बहुत थोड़े लोग थे। मीराबहन के आश्रम 'पशुलोक' से हम हरिद्वार आ रहे थे। विनोबाजी की कमर और पैर में चोट लगी थी। उन्हें कुर्सी पर ले जाया जाता था, पर बीच-बीच में वह कुर्सी से उतरकर पैदल चलने लगते थे।

उस दिन जब वह पैदल चल रहे थे तो एक भाई उनके पास आकर बोले, "बाबा, मुझे गुस्सा बहुत आता है। कैसे दूर करूँ ?"

विनोबाजी ने कहा, "बचपन में मुझे भी बहुत गुस्सा आता था। मैं अपने पास मिश्री रखता था। जैसे ही गुस्सा आया कि मिश्री का एक टुकड़ा मुँह में डाल लिया। गुस्सा काबू में आ जाता था।

"लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता था कि गुस्सा आ जाता था और मिश्री पास में नहीं होती थी...!"

"तब आप क्या करते थे?" उन भाई ने उत्सुकता से पूछा।

विनोबाजी ने कहा, "तब मैंने सोचा कि ऐसे समय क्या किया जाय। सोचते-सोचते एक बात ध्यान में आई। जब हमारे मन के प्रतिकूल कोई चीज आती है तो हम एकदम उत्तेजित होते हैं। यदि पहले क्षण को हम टाल जायँ तो गुस्से को सहज ही जीत सकते हैं। हर्ष और विषाद से हम तभी अभिभूत होते हैं, जबकि उनका पहला क्षण हम पर हावी हो जाता है। उस क्षण को टालना शुरू में थोड़ा कठिन होता है; लेकिन अभ्यास से वह बहुत आसान हो जाता है।"

आगे विनोबाजी ने बताया कि इसका उन्होंने ख़ूब अभ्यास कर लिया। बापू के गोली लगी, जमनालालजी का देहान्त हुआ, क़िसी ने आकर ख़बर दी; लेकिन उनके मन पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वह जो काम कर रहे थे, करते रहे। "लेकिन", विनोबाजी ने कहा, "आगे जाकर लगा कि बापू और जमनालाल-जी के जाने से कितनी बड़ी क्षति हुई, किन्तु पहले क्षण तो ऐसा रहा, जैसे कुछ हुआ ही न हो।" □

मिथिला नगरी के राजा जनक एक दिन रात को अपने महल में सो रहे थे कि उन्होंने सपना देखा—उनके राज्य में विप्लव हो गया है और प्रजा ने उन्हें नगर से निकाल दिया है। भूखे-प्यासे वह इधर-उधर घूम रहे थे कि उन्हें एक सेठ की हवेली के बाहर खिचड़ी का सदाव्रत बँटता दिखाई दिया। वह वहाँ गये और मिट्टी के बर्तन में थोड़ी-सी खिचड़ी ले आये।

जैसे ही खाने बैठे कि दो गायें लड़ती हुई वहाँ आईं। बीच-बचाव करने में वे दौड़ीं। उनकी टक्कर से खिचड़ी का बर्तन फूट गया और खिचड़ी मिट्टी में मिल गई।

राजा निराश हो गये और दुःख से रोने-बिलखने लगे। तभी अचानक उनकी आँख खुल गई। सवेरा हो गया था और उनके दरबार के भाट 'महाराजा की जय' के नारे लगा रहे थे।

राजा चकित था। आखिर सच क्या है? सपने की बात या जय-जयकार के नारे? खिचड़ी के लिए उनका हैरान होना, या इतना बड़ा राजा होना?

जब वह दरबार में गये तो उन्होंने वहाँ उपस्थित ज्योतिषियों और पण्डितों को सारी बात बताकर पूछा कि सच क्या है?

राजा की शंका का कोई भी समाधान नहीं कर पाया। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

तभी परम ज्ञानी अष्टावक्र वहाँ आये। राजा ने वही प्रश्न उनसे किया। उन्होंने उत्तर दिया, "राजन्, न वह सच्चा था, न यह सच्चा है। सपना एक भ्रमजाल था, यह संसार भी एक भ्रमजाल है। न सपना शाश्वत था, न दुनिया का यह भोग और वैभव ही शाश्वत है।" □

नौआखाली के दिनों की बात है। वहाँ गाँधीजी की पद-यात्रा चल रही थी। एक दिन गाँधीजी देवीपुर नामक ग्राम में पहुँचे, जहां उनका भव्य स्वागत किया गया। ध्वज, तोरण, पताका आदि से सजावट की गई। गाँधीजी ने वह सब देखा, तो बड़े गम्भीर हो गये, पर उस दिन मौनवार होने के कारण बोले कुछ नहीं।

शाम को मौन समाप्त होने पर उन्होंने मुख्य कार्यकर्ता को बुलाकर पूछा, "आप ये चीजें कहाँ से लाये ?"

उस भाई ने कहा, "हम सबने आठ-आठ आने देकर तीन सौ रुपये इकट्ठे किये। उसी में से ये चीजें मँगाई हैं। बापू, आप यहाँ कब-कब आते हैं।"

गांधीजी को बड़ी वेदना हुई। वह बोले, "ये सब फूल और यह सब सजावट क्षण-भर में मुरझा जायगी। मुझे लगता है, आप सब मुझे धोखा दे रहे हैं। मेरे लिए आप सारा ठाठ-बाट रचकर साम्प्रदायिक भावना को भड़का रहे हैं। मैं इस समय अग्नि की ज्वाला में जल रहा हूँ। इन फूल-मालाओं के स्थान पर सूत के हार सजाये जाते तो मुझे इतना न खटकता। सूत के हार शोभा बढ़ाते और उनसे कपड़ा भी बनता। मेरे प्रति प्रेम प्रकट करने के लिए आपने यह सजावट की है तो भी वह अनुचित है। आपको मेरे प्रति प्रेम हो तो मेरे कहने पर अमल करें। इतने कत्ले-आम के बाद इन फूलों पर इतना रुपया ख़र्च करना आपको कैसे सूझा, यह मैं नहीं समझ सका। आप तो कांग्रेस के कार्यकर्ता हैं। फिर आपने विलायती और देसी मिल का कपड़ा, रेशम और रिबन, इन सबका सजावट में इस्तेमाल किया। यह सब मेरी निगाह में बहुत बुरा है।"

गांधीजी की अन्तर्व्यथा में से निकले ये शब्द शत-शत मुख से आज भी चीख-चीखकर देशवासियों से कह रहे हैं—अगर मेरे लिए तुम्हारे मन में प्रेम और आदर है तो मुझे धोखा मत दो। मैंने जो कुछ कहा है, उस पर चलो। उस पर अमल करो। □

७२ / जीवन की सच्चाई

किसी समय धारा नगरी में एक राजा राज करता था। उसका नाम था भोज। कहते हैं, कवियों में, योगियों में, दानियों में, धनवालों में, धनुर्धरों में और धर्मात्माओं में उसके समान कोई दूसरा राजा नहीं हुआ। उसकी उदारता और प्रजा के प्रति उसके प्रेम की बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। उसने सब प्रकार का जीवन जिया। सब तरह के अनुभव प्राप्त किये।

जब अन्त समय आया, तो उसने अपने दीवान को बुलाकर कहा, "मेरे मरने के बाद एक काम करना।"

"क्या, महाराज ?" दीवान ने उत्सुकता से पूछा।

भोज ने कहा, "जब मेरे शरीर को श्मशान-भूमि ले जाने को हों, तो मेरा एक हाथ सफेद और दूसरा काला कर देना और दोनों हाथों को सबको दिखाते हुए अर्थी को ले जाना।"

राजा के इस निर्देश को सुनकर दीवान हैरानी में पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि राजा इस तरह का आदेश क्यों दे रहे हैं। झिझकते हुए उसने पूछा, "राजन, आप ऐसा करने के लिए क्यों कह रहे हैं ?"

राजा भोज बोला, "इसलिए कि ख़ाली हाथ देखकर लोगों

को पता चल जाय कि राजा हो या रंक, कोई भी अपने साथ इस धरती से धन-दौलत आदि नहीं ले जाता। सब ख़ाली हाथ आते हैं, ख़ाली हाथ जाते हैं। सफ़ेद और काला रंग यह बताने के लिए है कि आदमी के साथ अगर कुछ जाता है तो अच्छे और बुरे कर्म जाते हैं।"

राजा ने जीवन की एक ऐसी सच्चाई को उजागर कर दिया, जिसे दीवान कभी भूल नहीं सका। पाठक भी शायद ही भूल सकें। □

७३ / सही रास्ता

किसी नगर में एक साधु रहता था। उसके चेहरे पर हर घड़ी प्रसन्नता छाई रहती थी, उसके जीवन में मस्ती का साम्राज्य था। लोग अपनी-अपनी समस्याएँ लेकर उसके पास आते थे और सन्तुष्ट होकर जाते थे।

एक दिन एक सेठ साधु के पास आया। प्रणाम करके बोला, "महाराज, मेरे पास किसी चीज़ की कमी नहीं है, धन-दौलत, बाल-बच्चे सबकुछ हैं। फिर भी मेरा मन बडा अशान्त रहता है। क्या करूँ ?"

साधु ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप बैठा रहा, फिर उठकर चल दिया। सेठ भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। आश्रम के एक कोने में जाकर साधु ने आग जलाई और एक-एक लकड़ी उसमें डालता रहा। आग तेज होती रही। कुछ देर के बाद वह बिना सेठ की ओर देखे उठ खड़ा हुआ।

सेठ को बड़ी हैरानी हुई। वह तो अपना दुःख लेकर आया

था, पर साधु अपने काम में लगा रहा और फिर बिना कुछ कहे जा रहा था ! सेठ ने आगे बढ़कर कहा, "स्वामीजी, मैं बड़ी आशा लेकर आपकी सेवा में आया हूँ। मुझे कुछ रास्ता बताइये ।"

साधु बड़े जोर से हँसा। बोला, "अरे मूर्ख, मैं इतनी देर से कर क्या रहा था ? तुझे ही तो रास्ता बता रहा था। देख, हर आदमी के अन्दर आग होती है। उसमें प्यार की आहुति दें तो वह आनन्द देती है। घृणा की आहुति दो तो वह जलती है। तू अपनी आग में रात-दिन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर की लकड़ियाँ डाल रहा है। भले आदमी, बीज अशान्ति के बोयेगा तो शान्ति के फल कैसे पावेगा ? अपने अन्दर को टटोल, सुख और दुःख बाहर नहीं हैं, भीतर हैं ।"

सेठ की आँखें खुल गईं। उसे सही रास्ता मिल गया। उसका जीवन नई दिशा में मुड़ गया। □

७४ / धीरज और शान्ति का महत्त्व

एक बार भगवान बुद्ध कहीं जा रहे थे। उनका शिष्य आनन्द साथ था। रास्ते में आराम करने के लिए वे एक पेड़ के नीचे रुक गये। बुद्ध को प्यास लगी। उन्होंने आनन्द को पानी लाने को कहा। पास में एक नाला बहता था। आनन्द वहाँ गया और थोड़ी देर में ख़ाली हाथ लौट आया। बोला, "भन्ते, उस नाले में से अभी-अभी गाड़ियाँ निकली हैं। पानी गन्दा हो गया है। मैं नदी से पानी लिये आता हूँ।"

नदी वहाँ से कुछ दूर थी। बुद्ध ने कहा, "नहीं, पानी नाले से

ही लाओ।"

आनन्द गया, पर पानी अब भी गँदला था। वह लौट आया। बोला, "नदी दूर है तो क्या, मैं अभी दौड़कर पानी लिये आता हूँ।"

बुद्ध ने कहा, "नहीं-नहीं, पानी उस नाले से ही लाओ।"

बेचारा आनन्द लाचार होकर तीसरी बार नाले पर गया तो देखता क्या है, कीचड़ नीचे बैठ गई है, पत्तियाँ इधर-उधर हो गई हैं। पानी एकदम निर्मल है। वह खुशी-खुशी पानी लेकर बुद्ध के पास आ गया।

बुद्ध ने कहा, "आनन्द, आदमी के लिए धीरज और शान्ति बहुत आवश्यक है। बिना उसके निर्मलता प्राप्त नहीं होती।" □

७५ / करनी का फल

किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास खेती-बारी के लिए ज़मीन थी, लेकिन उस ज़मीन पर फसल अच्छी नहीं होती थी। बेचारा हैरान था।

एक दिन वह गर्मी के मौसम में अपने खेत पर पेड़ की छाया में बैठा था कि देखता क्या है, एक बिल में से साँप निकला और फन उठाकर खड़ा हो गया।

अचानक ब्राह्मण को विचार आया, हो न हो, इस साँप के कारण ही मेरी खेती बिगड़ जाती है। मुझे इसकी सेवा करनी चाहिए।

यह सोचकर वह कहीं से दूध लाया और उसे एक बर्तन में डालकर बिल के पास रख आया।

अगले दिन जब वह वहाँ गया तो देखा, बर्तन में दूध नहीं है और उसमें सोने की एक मुहर पड़ी है। उसे बड़ा हर्ष हुआ।

उस दिन से वह रोज बर्तन में दूध लेकर जाता, बिल पर रख आता और अगले दिन उसे सोने की एक मुहर मिल जाती।

संयोग से एक बार उसे कहीं बाहर जाना था। वह बड़ी दुविधा में पड़ा कि साँप को दूध कौन रखेगा? बहुत सोचकर उसने अपने लड़के से चर्चा की और दूध रख आने को कहा।

लड़के ने वैसा ही किया। जब उसने दूध के बर्तन में मुहर देखी तो उसने सोचा कि ज़रूर ही यहाँ धरती में बहुत-सी मुहरें भरी पड़ी हैं। उन्हीं में से यह साँप रोज़ एक मुहर ले आता है। साँप को मारकर सारी मुहरों को ले लेना चाहिए।

यह सोचकर वह दूसरे दिन जब दूध लेकर गया तो वहीं ठहर गया। थोड़ी देर में साँप निकलकर आया तो उसने बड़े जोर से उसके डंडा मारा, लेकिन निशाना चूक गया। डंडा उसके लगा नहीं और साँप ने उछलकर उसे काट लिया। थोड़ी देर में लड़का मर गया।

जब उसका बाप लौटकर आया और उसने बेटे की करनी और मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बड़ा दुःख हुआ। पर उसने कहा, "जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।" □

७६ / अनुपम बलिदान

एक शिकारी था। वह बड़ा ही क्रूर और निर्दय था। पक्षियों का हनन करके उन्हें खा जाता था। यही उसका दैनिक काम था।

एक दिन की बात है कि उसके जाल में एक कबूतरी फँस गई। वह उसे लेकर चला तो बादल घिर आये। ज़ोर की वर्षा होने लगी। पास ही पीपल का एक घना पेड़ था। शिकारी उस पेड़ के नीचे ठहर गया।

संयोग से उस पीपल के कोटर में एक कबूतर रहता था। यह वही कबूतर था, जिसकी कबूतरी को उसने पकड़ लिया था। पत्नी के विरह में कबूतर बेहाल होकर विलाप कर रहा था। कबूतरी पति के प्रेम को देखकर गद्गद हो गई। उसे लगा, उसका जीवन धन्य हो गया। उसने पति से कहा, "मुझे इस शिकारी ने पकड़ लिया है, पर तुम मेरी चिन्ता मत करो। यह मेहमान हमारे घर आया है। इसका ध्यान रखो।"

शिकारी सर्दी के मारे काँप रहा था। कबूतर ने लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। आग जल जाने से शिकारी को बहुत आराम पहुँचा। शिकारी भूखा था, पर कबूतर के घर में अन्न का एक दाना भी नहीं था। कबूतर सोचने लगा कि क्या करे! सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझा। अपने शरीर से शिकारी की भूख शान्त करने के लिए वह स्वयं आग में कूद पड़ा। यह देखकर कबूतरी को पति के त्याग से जहाँ सन्तोष हुआ, वहाँ उसके बिछोह से उसका हृदय दग्ध हो गया।

उधर शिकारी को काटो तो खून नहीं। जिन पक्षियों को मारकर वह खा जाता था, उन्हीं में से एक ने उसके साथ कितना बड़ा उपकार किया! अपने को ही बलिदान कर दिया।

शिकारी को अपने दुष्कृत्य पर बड़ी ग्लानि हुई। उसकी आत्मा चीत्कार करने लगी। उसने झट जाल खोलकर कबूतरी को मुक्त कर दिया।

शिकारी के चंगुल से छूटकर जब कबूतरी बाहर आई, तो उसके मन में एक ही बात थी, जब उसका पति नहीं रहा तो वह

जीकर क्या करेगी।

इसके बाद उस पतिव्रता ने जो किया, उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह उड़ी और एकदम आग में कूद पड़ी।

कहानी पुरानी है, पर उसकी सीख आज भी नई है। मनुष्य की सोई हुई चेतना को जगाने के लिए वह आज भी बहुत-कुछ कहती है। □

७७ / अन्तर ज्योति

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास अपार धन-सम्पत्ति थी। विशाल हवेली थी। नौकर-चाकर थे। सब तरह का आराम था, फिर भी उसका मन अशान्त रहता था। हर घड़ी उसे कोई-न-कोई चिन्ता घेरे रहती थी। कभी-कभी तो सारी रात जागते वीत जाती थी। एक पल को भी उसकी आँखें नहीं लगती थीं।

सेठ उदास रहता। जब उसकी हालत ख़राब होने लगी तो एक दिन उसके एक मित्र ने शहर से कुछ दूर आश्रम में रहने वाले साधु के पास जाने की सलाह दी। कहा, "वह पहुँचा हुआ साधु है। कैसा भी दुःख लेकर जाओ, दूर कर देता है।"

सेठ साधु के पास गया। अपनी सारी मुसीबत सुनाकर बोला, "स्वामीजी, मैं जिन्दगी से बेजार हो गया हूँ। मुझे बचाइये।"

साधु ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "घबराओ नहीं। तुम्हारी सारी अशान्ति दूर हो जायगी। प्रभु के चरणों में लौ लगाओ।"

उसने तब ध्यान करने की सलाह दी और उसकी विधि भी

समझा दी। लेकिन सेठ का मन उनमें नहीं रमा। वह ज्योंही जप या ध्यान करने बैठता, उसका मन-कुरंग चौकड़ी भरने लगता। इस तरह कई दिन बीत गये। उसने साधु को अपनी हैरानी बताई, पर साधु ने कुछ नहीं कहा। चुप रह गये।

एक दिन सेठ साधु के साथ आश्रम में घूम रहा था कि उसके पैर में काँटा घुस गया। सेठ वहीं बैठ गया और पैर पकड़कर चिल्लाने लगा, "स्वामीजी, मैं क्या करूँ? बड़ा दर्द हो रहा है।"

साधु ने कहा, "चिल्लाते क्यों हो? काँटे को निकाल दो।"

सेठ ने जी कड़ा करके काँटे को निकाल दिया। उसे चैन पड़ गया।

साधु ने तब गम्भीर होकर कहा, "सेठ, तुम्हारे पैर में जरा-सा काँटा चुभा कि तुम बेहाल हो गये। लेकिन यह तो सोचो कि तुम्हारे भीतर कितने और कितने बड़े-बड़े काँटे चुभे हुए हैं। लोभ के, मोह के, क्रोध के, ईर्ष्या के, द्वेष के, और न जाने किस-किसके। जबतक तुम उन्हें उखाड़ोगे नहीं, शान्ति कैसे मिलेगी?"

साधु के इन शब्दों ने सेठ के अन्तर में ज्योति जगा दी। उसके अज्ञान का अन्धकार दूर हो गया। ज्ञान का प्रकाश फैल गया। उसे शान्ति का रास्ता मिल गया। □

७८ / पसीने की कमाई का म्रानन्द

रैदास नाम के एक बड़े भगवद्भक्त थे। वह काशी में रहते थे। गंगा के घाट के पास ही उनकी झोंपड़ी थी, जिसमें वह अपनी पत्नी के साथ रहते थे और झोंपड़ी के बाहर बैठकर जूते गाँठते रहते थे। अपनी मेहनत-मजूरी से जो मिल जाता, उसी में

सन्तोष करते और मस्ती का जीवन बिताते। काम से समय मिलता तो सत्संग में चले जाते। कमाई बड़ी कम थी, पर इसकी उन्हें चिन्ता न थी। उनकी स्त्री बड़ी भली थी। पति को जो भी मिलता, उसी में खुशी-खुशी गुज़र-बसर कर लेती।

एक दिन एक साधु रैदास के पास आया। उनकी दीनदशा देखकर उसने अपनी झोली में से एक पत्थर निकाला। बोला, "रैदास, लो, यह पारस पत्थर है। लोहे को सोना बना देता है।"

इतना कहकर साधु ने लोहे का एक टुकड़ा लिया और सोना बनाकर दिखा दिया।

रैदास ने कहा, "महाराज, आप अपनी इस नियामत को अपने पास ही रहने दीजिये। मुझे नहीं चाहिए। मैं किसी की दी हुई मदद नहीं लेता। अपनी मेहनत से जितना कमा लेता हूँ, उसी में अपनी घर-गृहस्थी चला लेता हूँ।"

साधु ने बड़ी ममता से कहा, "रैदास, आदमी को अच्छी तरह से रहना चाहिए। देखो तो, तुम्हारी कुटिया की क्या हालत हो रही है।"

रैदास बोले, "स्वामीजी, हमें अपनी इस जिन्दगी से बड़ा सुख-सन्तोष है। पसीने की कमाई का अपना आनन्द होता है। वही असली बात है।"

साधु ने बहुत आग्रह किया, पर रैदास नहीं माने। उन्होंने कहा, "स्वामीजी, आपको यह पारस किसी को देना ही है तो राजा को दीजिये। वह बड़ा गरीब है। उसे हर घड़ी रुपये की जरूरत रहती है। या फिर दीजिए ग़रीब मन वाले उस धनी को, जो रात-दिन पैसे के पीछे पड़ा रहता है।"

रैदास ने आगे और बात नहीं की। वह जूते गाँठने में लग गये। बेचारा साधु अपना-सा मुँह लेकर चला गया। □

एक फ़कीर था। वह जंगल में अपनी कुटिया बनाकर रहता था। उसे एक विद्या आती थी। वह पीतल को सोना बना देता था। लेकिन इस विद्या का प्रयोग वह तभी करता था, जब उसकी बहुत जरूरत होती थी और वह भी ग़रीबों के फ़ायदे के लिए।

एक दिन एक बहुत ही ग़रीब ब्राह्मण उसके पास आया। उसे अपनी लड़की का विवाह करना था और उसके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। उसने फ़कीर को अपनी हैरानी बताई। फ़कीर ने समझ लिया कि वह सचमुच परेशानी में है। उसने पीतल के एक बर्तन को सोने का बनाकर उसे दिया और कहा कि इसे बेचकर रुपये से अपनी बेटी का ब्याह कर देना।

ब्राह्मण उस बर्तन को लेकर एक सुनार की दुकान पर गया। जब उसने बर्तन दिखाया तो सुनार को सन्देह हुआ। ऐसे फटेहाल आदमी के पास सोने का बर्तन ! हो न हो, यह राजा का है।

वह उसे पकड़कर राजा के पास ले गया। राजा ने पूछा कि क्या बात है तो उसने सारी बात सच-सच बता दी।

सुनकर राजा के मन में लालच आ गया। उसने सोचा कि फकीर को बुलवाकर यह विद्या सीखनी चाहिए।

यह सोचकर उसने ब्राह्मण को तो छुड़वा दिया, साथ ही आदमी से कहा कि जाओ और उस फ़कीर को पकड़कर ले आओ। आदमी गया और थोड़ी देर में फकीर को साथ लेकर आ गया। राजा ने कहा, "फ़कीर, तुम पीतल को सोना बनाना जानते हो ?"

फ़कीर बोला, "जी हाँ।"

राजा ने कहा, "यह विद्या हमें सिखा दो।"

फ़कीर निडरता से बोला, "नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"जानते हो, मैं कौन हूँ।" राजा ने कड़ककर कहा।

फ़कीर बोला, "जानता हूँ, ख़ूब अच्छी तरह से जानता हूँ।"

राजा को बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा, "मैं तुम्हें पन्द्रह दिन का समय देता हूँ। अगर इस बीच तुमने मुझे विद्या सिखा दी तो ठीक, नहीं तो तुम्हें फाँसी के तख्ते पर लटकवा दूंगा।"

उसने फ़कीर को रवाना कर दिया। वह रोज शाम को उसके पास आदमी भेजता कि वह तैयार है या नहीं। फ़कीर का एक ही उत्तर होता, "नहीं।"

ऐसी विद्या को राजा छोड़ना नहीं चाहता था। उसने देख लिया कि फकीर को डराने-धमकाने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा तो उसने दूसरा उपाय सोचा। जब सात दिन बाकी रह गये तो उसने अपना वेश बदला और फ़कीर के पास जाकर उनकी सेवा करने लगा। इतनी सेवा की कि फकीर खुश हो गया। उसने पूछा, "बोल, तू क्या चाहता है ?"

राजा ने कहा, "मुझे आप वह विद्या सिखा दीजिये, जिससे आप पीतल को सोना बना देते हैं।"

फकीर ने उसे वह विद्या सिखा दी और कहा, "देख, इसका इस्तेमाल दीन-दुःखियों की भलाई के लिए ही करना।"

राजा अपने महल में आ गया। पन्द्रहवें दिन उसने फकीर को बुलाया और कहा, "बोलो, विद्या सिखाने को तैयार हो या नहीं ?"

फकीर ने कहा, "नहीं।"

"तो तुम्हें फाँसी दिलवा दूंगा ?"

"जरूर।"

तब राजा ने गर्व से हँसकर कहा, "जिस विद्या का तुम्हें इतना घमण्ड है, उसे मैं जानता हूँ।"

इतना कहकर राजा ने एक पीतल के बर्तन को सोने का करके

दिखा दिया।

फ़कीर ने कहा, "राजन्, तुमने यह विद्या किसी की सेवा करके सीखी है। विद्या कभी भी डरा-धमकाकर हासिल नहीं की जा सकती।" □

८० / खाना कैसा चाहिए

दो मित्र थे। एक का नाम था अशोक और दूसरे का नाम पुनीत। एक दिन अशोक ने पुनीत को अपने घर खाना खाने बुलाया। उसने तरह-तरह की बढ़िया चीज़ें बनवाईं—पूड़ी-कचौड़ी, खीर, आदि-आदि। जब दोनों खाना खा चुके, तो अशोक ने पूछा, "पुनीत, खाना कैसा लगा?"

पुनीत चुप रहा तो अशोक ने पूछा, "क्यों, खाना पसन्द नहीं आया?"

पुनीत बोला, "कल तुम मेरे यहाँ खाना खाने आना। तब मैं तुम्हारी बात का जवाब दूंगा।"

अगले दिन अशोक पुनीत के यहाँ खाना खाने गया। पुनीत ने बड़ा सादा खाना बनवाया था। दोनों मित्रों ने खाना खाया। खाने के बाद अशोक ने कहा, "तुम आज मेरे सवाल का जवाब देने वाले थे?"

पुनीत बोला, "जवाब तो तुम्हें मिल गया न। तुम्हारे यहाँ खाना खाने के बाद मुझे एक घण्टे सोना पड़ा था। मेरे यहाँ खाकर अब तुम सीधे काम पर जाओ और मौज से काम करो।"

अब अशोक ने समझा कि काम करने वाले आदमी के लिए किस तरह का खाना चाहिए। □

८१ / हम सब चोर हैं

पुराने ज़माने की बात है। एक आदमी चोरी के अपराध में पकड़ा गया। उसे राजा के सामने पेश किया गया। उन दिनों चोरों को फाँसी की सज़ा दी जाती थी। अपराध सिद्ध हो जाने पर इस आदमी को भी फाँसी की सज़ा मिली। राजा ने कहा, "फाँसी पर चढ़ने से पहले तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ।"

आदमी ने कहा, "राजन् ! मैं मोती तैयार करना जानता हूँ। मेरी इच्छा है कि मरने से पहले कुछ मोती तैयार कर जाऊँ।"

राजा ने उसकी बात मान ली और उसे कुछ दिन के लिए छोड़ दिया।

आदमी ने महल के पास एक खेत की ज़मीन को अच्छी तरह खोदा और समतल किया। राजा और उसके अधिकारी वहाँ मौजूद थे।

खेत ठीक होने पर उसने राजा से कहा, "महाराज, मोती बोने के लिए जमीन तैयार है। लेकिन उसमें बीज वही डाल सकेगा, जिसने तन से या मन से कभी चोरी न की हो। मैं तो चोर हूँ, इसलिए बीज डाल नहीं सकता।"

राजा ने अपने अधिकारियों की ओर देखा। कोई भी उठकर नहीं आया।

तब राजा ने कहा, "मैं तुम्हारी सज़ा माफ़ करता हूँ। हम सब चोर हैं। चोर, चोर को क्या दण्ड देगा।" □

बुन्देलखण्ड में ओरछा के निकट एक नदी है, जिसे सातार कहते हैं। उस नदी के किनारे एक छोटी-सी कुटिया में एक आदमी रहता था। घरबार उसका कुछ था नहीं। बदन पर वह बस एक लँगोटी लगाता था। लोग उसे 'ब्रह्मचारी' कहकर पुकारते थे। आसपास के गाँवों में जब कोई छोटा-मोटा उत्सव होता था, तो पूजा-पाठ के लिए लोग उसे ले जाते थे। उसने कुछ मन्त्र कण्ठस्थ कर लिए थे।

कुटिया के आसपास घना जंगल था। उस जंगल में भाँति-भाँति के पक्षी चहचहाते रहते थे और वन्य-पशु भी घूमते थे।

एक दिन जंगल का एक बड़ा अधिकारी आया। बोला, "ब्रह्मचारी, इधर एक जंगली सूअर आ गया है। उसे उड़ाना है। चलो, तुम भी चलो।"

ब्रह्मचारी ने हाथ जोड़कर कहा, "न-न, मैं नहीं जाऊँगा। मुझे जानवरों से बड़ा डर लगता है।"

अधिकारी मुँह बनाकर बोला, "अरे, ब्रह्मचारी होकर डरते हो। चलो, उठो, मैं साथ हूँ। हाँ, यह बन्दूक ले लो। अगर सूअर तुम्हारे सामने आ जाय तो...।"

अधिकारी की बात को बीच में ही काटकर ब्रह्मचारी ने कहा, "मैं क्या करूँगा! मुझे बन्दूक चलाना नहीं आता।"

अधिकारी बोला, "कोई बात नहीं है। सूअर तुम्हारे पास आयेगा नहीं। अगर आ जाय तो बन्दूक उल्टी पकड़कर इसकी मूंठ उसके सिर पर जमा देना।"

ब्रह्मचारी इन्कार करता रहा पर अधिकारी माना नहीं। उसे खींचकर जंगल में ले गया। उसके हाथ में एक बन्दूक थमा दी और अपने से कुछ गज के फासले पर उसे बिठा दिया।

हाँका हुआ। थोड़ी देर में झाड़ियों के बीच से सूअर दौड़ता हुआ आगे आया। अधिकारी ने निशाना साधकर गोली दाग़ दी, लेकिन सूअर गिरा नहीं। साफ़ था कि गोली चूक गई। अब क्या हो? दूसरी गोली चले तबतक वह आगे निकल गया।

अधिकारी हैरान था कि क्या करे। अचानक उसे बन्दूक की आवाज सुनाई दी और उसने देखा, सूअर कुलाँट खाकर धरती पर गिर गया है और छटपटा रहा है।

अधिकारी ने पास जाकर देखा तो भौंचक्का रह गया। गोली सूअर के ठीक मर्म-स्थल पर लगी थी।

अधिकारी को देखकर ब्रह्मचारी वहाँ आ गया। अधिकारी ने उसकी ओर कड़ी निगाह से देखा तो वह बोला, "यह क्या हो गया? सूअर जैसे ही आगे आया कि मेरी तो जान सूख गई। हाथ काँपने लगे। घोड़ा दब गया।"

अधिकारी ने कहा, "मुझे बनाने की कोशिश मत करो। सच-सच बताओ तुम कौन हो? तुम अव्वल दर्जे के निशानेबाज़ हो। सूअर के ठीक वहाँ पर गोली लगी है, जहाँ लगनी चाहिए थी। यह काम किसी कुशल निशानेबाज़ का ही हो सकता है।"

ब्रह्मचारी का चेहरा देखते ही बनता था, मानो अभी एक क्षण में रो पड़ेगा। बोला, "देखो तो, अभी तक मेरा दिल कितना धड़क रहा है। राम-राम आज ऊपर वाले ने ही मेरी जान बचा दी।"

ब्रह्मचारी जैसे-जैसे अपनी बात कहता गया, अधिकारी का सन्देह और बढ़ता गया। अन्त में ब्रह्मचारी उसे साथ लेकर अपनी कुटिया पर आया। अधिकारी को कसम खिलाई कि वह किसी से कहेगा नहीं। फिर बोला, "मैं चन्द्रशेखर आज़ाद हूँ।" □

□

सन् १९६२ में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, उन दिनों की बात है। चुशूल के मैदान में एक युवक मेजर बड़ी मुस्तैदी से लड़ रहा था। अचानक एक दिन उसकी माँ को तार मिला कि उसका बेटा लड़ाई में मारा गया। माँ इस समाचार से स्तब्ध रह गई। उसे बड़ा दुःख हुआ। बेटा आखिर बेटा ही था! पर वह करती क्या! जाने कितने नौजवान बेटे अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा रहे थे।

दो दिन निकल गये। अचानक तीसरे दिन माँ को तार मिला कि उनका लड़का जीवित है और उसे जल्दी ही लखनऊ लाया जा रहा है।

माँ को अपार हर्ष हुआ। उसको खोई निधि मिल गई। लड़के को लखनऊ और फिर दिल्ली के सैनिक अस्पताल में भरती किया गया। राजधानी के नागरिकों को जब यह समाचार मिला, तो सारी दिल्ली अस्पताल में उमड़ पड़ी। हमलोग भी वहाँ गये। देखा, युवक का सारा चेहरा बिगड़ गया था और हाथ-पैरों की उँगलियाँ कटने की बात थी। पर माँ खुश थी। उसके चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही थी।

मैंने कहा, "माँ, तुम्हें कैसा लगता है?"

माँ की आँखें चमक उठीं। बोली, "मेरा बेटा मैदान में डटा रहा, इससे बढ़कर माँ के लिए गर्व की बात और क्या हो सकती है? भगवान से मेरी प्रार्थना है कि यह जल्दी से ठीक हो जाय और फिर देश के लिए जो कर सकता है, करे।" □

८४ / प्यार का नतीजा

एक दिन एक चोर किसी महिला के कमरे में घुस आया। महिला अकेली थी। चोर ने छुरा दिखाकर कहा, "अगर तू शोर मचावेगी तो मैं तुझे मार डालूंगा।"

महिला बड़ी भली थी। वह बोली, "मैं शोर क्यों मचाऊँगी! तुमको मुझसे ज्यादा चीज़ों की ज़रूरत है। आओ, मैं तुम्हारी मदद करूँगी।"

इसके बाद उसने अलमारी का ताला खोल दिया और एक-एक कीमती चीज उसके सामने रखने लगी। चोर हक्का-बक्का होकर उसकी ओर देखने लगा। स्त्री ने कहा, "तुम्हें जो-जो चाहिए, खुशी से ले जाओ। ये चीज़ें तुम्हारे काम आएंगी। मेरे पास तो बेकार पड़ी हैं।"

थोड़ी देर में वह महिला देखती क्या है कि चोर की आँखों से आँसू टपक रहे हैं और वह बिना कुछ लिये चला गया।

अगले दिन उस महिला को एक चिट्ठी मिली। उस चिट्ठी में लिखा था:

"मुझे घृणा से डर नहीं लगता। कोई गालियाँ देता है तो उसका भी मुझपर असर नहीं होता। उन्हें सहते-सहते मेरा दिल पत्थर-सा हो गया। पर मेरी प्यारी बहन, प्यार से मेरा दिल मोम हो जाता है। तुमने मुझ पर प्यार बरसाया। मैं उसे कभी नहीं भूल सकूंगा।" □

अरब देश की बात है। एक राजा था। उसके बड़े ठाठ-बाट थे। उसके पास किसी चीज़ की कमी न थी।

एक बार वह राजा लड़ाई पर गया। उसके खाने-पीने का सामान इतना था कि उसे लादने के लिए तीन सौ ऊँटों की जरूरत पड़ी।

दुर्भाग्य से वह दुश्मन से हार गया और बन्दी बना लिया गया। उसके पास उसका रसोइया खड़ा था। राजा ने कहा, "मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को तैयार कर दो।"

रसोइये के पास मांस का एक टुकड़ा बचा था। उसने उसे देगची में डालकर उबलने को रख दिया। कहीं कुछ साग-सब्जी मिल जाय तो अच्छा होगा, यह सोचकर वह खोज में निकल पड़ा।

इतने में एक कुत्ता वहाँ आया। माँस की गन्ध से उसने अपना मुँह देगची में डाल दिया। संयोग से देगची में उसका मुँह अटक गया। उसने मुँह निकालने की कोशिश की। जब न निकला, तो देगची को लेकर ही वह वहाँ से भागा।

राजा ने देखा तो जोर से हँस पड़ा। पास में एक संतरी खड़ा था। उसने राजा की हँसी सुनी तो उसे बड़ा अचरज हुआ। उसने कहा, "आप इतनी मुसीबत में हैं, तब भी हँस रहे हैं। क्या बात है?"

राजा ने जवाब दिया, "मुझे यह सोचकर हँसी आ रही है कि कल तक मेरे रसोई के सामान को ले जाने के लिए तीन सौ ऊँटों की जरूरत होती थी। अब उसके लिए एक कुत्ता ही काफ़ी है।"

किसी ने ठीक ही कहा है कि सुख में तो सभी खुश रहते हैं, लेकिन असली मर्द तो वह है जो मुसीबत में भी हँस सके। □

किसी नगर में एक बनिया रहता था। उसके एक लड़का था। छोटी-सी उनकी दुकान थी। उससे जो मिल जाता, उसी में अपनी गुज़र-बसर कर लेते।

एक दिन की बात है कि बनिया चल बसा। लड़के ने सोचा कि अब यहाँ से परदेस जाकर धन कमाना चाहिए। उसके पास माल-मत्ता तो कुछ था नहीं, मन-भर की लोहे की एक तराजू थी। उसे लेकर वह पड़ोस के महाजन के पास गया और बोला, "काका! मैं परदेस जा रहा हूँ। आप इस तराज़ू को रख लीजिये। लौटकर आऊँगा, तब ले लूंगा।"

महाजन ने कहा, "ठीक है, छोड़ जाओ।"

बनिये के लड़के ने तराजू उसको सौंपी और परदेस को रवाना हो गया। वहाँ उसने खूब कमाई की। जब बहुत-सा धन इकट्ठा हो गया, तो वह अपने नगर लौट आया। अचानक उसे तराजू की याद आई। वह महाजन के पास गया और बोला, "काका! मेरी तराज़ू दे दीजिये।"

तराजू बढ़िया थी। महाजन को लालच हो आया। बहुत ही गम्भीर होकर उसने कहा, "बेटा मुझे बड़ा दुःख है कि तुम्हारी तराजू को चूहा ले गया और उसने उसे खा लिया।"

बनिये का लड़का चतुर था। समझ गया कि महाजन की नीयत में बदी आ गई है। उसने आगे कुछ कहना ठीक नहीं समझा। चुपचाप घर चला आया।

कुछ दिन बाद वह महाजन के पास गया। बोला, "काका! गंगा नहाने जा रहा हूँ। जरा अपने लड़के को साथ भेज दीजिये। थोड़ी देर में लौट आवेंगे।"

महाजन तैयार हो गया। उसने अपने लड़के को बुलाकर

कहा कि इसके साथ चले जाओ।

दोनों लड़के चल दिये। आगे जाकर बनिये के लड़के ने किया क्या कि महाजन के लड़के को एक कोठरी में बन्द करके ताला लगा दिया और घर आ गया।

महाजन ने उसे अकेला देखा तो पूछा, "मेरा लड़का कहाँ है ? वह तो तुम्हारे साथ गया था।"

बनिये के लड़के ने मुँह बनाकर उत्तर दिया, "क्या बताऊँ काका ! हम दोनों जा रहे थे कि अचानक एक चील आई और आपके लड़के को उठाकर ले गई और खा गई।"

महाजन को काटो तो खून नहीं ! बड़े ताव में बोला, "क्या कहते हो ! कहीं चील लड़के को उठाकर ले-जा सकती है !"

महाजन सारी बात समझ गया। वह सीधा राजा के पास गया। उसने राजा से फरियाद की, "मालिक ! बनिये का लड़का कहता है कि मेरे लड़के को चील उठाकर ले गई और खा गई।"

राजा ने फौरन बनिये के लड़के को बुलवाया। वह आया। राजा के पूछने पर उसने सारी बात कह सुनाई।

सुनकर राजा को बड़ी हँसी आई। उसने महाजन से कहा, "यह ठीक कहता है। जहाँ का चूहा एक मन लोहे की तराज़ू को ले जाकर खा सकता है, वहाँ की चील भी तुम्हारे लड़के को उठा-कर ले जा सकती है।"

महाजन के सामने अब कोई चारा न रहा। उसने तराज़ू लाकर बनिये के लड़के को दे दी। बनिये के लड़के ने महाजन के लड़के को लाकर उसके हवाले कर दिया। □

महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े सन्त हुए हैं। उनका नाम था एकनाथ। वह सबको प्रेम करते थे। कभी गुस्सा नहीं होते थे।

एक दिन वह पूजा कर रहे थे कि एक आदमी उनकी गोद में आ बैठा। एकनाथ ने प्रसन्न होकर कहा, "वाह ! तुम्हारे प्रेम से मुझे बहुत ही आनन्द मिला है।"

इसके बाद एकनाथ जब दोपहर का भोजन करने बैठे तो एक थाली उस आदमी के लिए भी परोसी गई। एकनाथ की पत्नी जैसे ही उसके पास आई कि वह उठकर उनकी पीठ पर सवार हो गया।

एकनाथ ने बड़े प्यार से अपनी पत्नी से कहा, "देखना, कहीं वह भाई तुम्हारी पीठ पर से नीचे न गिर जाय !"

पत्नी बोली, "नहीं, आप चिन्ता न करें। मुझे अपने बेटे को पीठ पर लादे रहने से बड़ा अभ्यास हो गया है।"

वह आदमी लज्जित होकर एकनाथ के चरणों में गिर पड़ा। बोला, "महाराज ! आप मुझे क्षमा करें। मुझसे एक आदमी ने कहा था कि अगर तुम एकनाथ को गुस्सा दिला दोगे तो हम तुम्हें सौ रुपये देंगे। इसीसे मैंने ऐसा किया। मुझे बड़ा दुःख है।"

एकनाथ ने प्यार से उसे उठाकर कहा, "छोड़ो उस बात को। आओ, हम खाना शुरू करें।"□

एक बूढ़ी स्त्री थी। उसके एक बेटा था। वह अपने बेटे के साथ ही रहती थी। एक दिन कुछ लोग उस स्त्री को उठाकर कहीं ले जा रहे थे। उसके सिर पर पट्टी बँधी थी और इधर-उधर से खून बह रहा था। वह ज़ोर-ज़ोर से कराह रही थी।

एक राहगीर ने यह देखा तो पूछा, "क्यों भाई! क्या बात है? इस बुढ़िया को क्या हो गया है? इसे कहाँ लिये जा रहे हो?"

बुढ़िया के साथ के लोगों में से एक ने कहा, "इसके लड़के ने किसी बात पर गुस्सा होकर इसे मार दिया है। इसका सिर फट गया है। हम इसको अस्पताल ले जा रहे हैं।"

यह सुनकर राहगीर को बड़ा बुरा लगा। वह बोला, "बड़ा कमीना है वह लड़का, जो माँ पर उसने हाथ उठाया! इससे तो वह पैदा ही न होता तो अच्छा था!"

कराहती माँ के कानों में ये शब्द पड़े तो उसने आँखें खोल दीं। रुक-रुककर बोली, "भैया! मेरे बेटे के लिए ऐसी बुरी बात मत कहो। उसने हाथ उठा दिया तो क्या हुआ! गुस्सा किसको नहीं आता! मेरे बेटे का गुस्सा उतर जायगा तो वह अपनी भूल समझ जायगा। फिर ऐसा नहीं करेगा। हाय, वह अगर पैदा न हुआ होता तो मेरी जिन्दगी ही सूनी रह गई होती।"

बुढ़िया आगे कुछ नहीं बोल सकी। उसकी आँखें बन्द हो गईं। वह फिर कराहने लगी।

राहगीर ने देखा, बुढ़िया की आँखों की कोरों से आँसू बह रहे हैं। राहगीर की आँखें डबडबा आईं। उसने अनुभव किया कि माँ की ममता की बराबरी संसार में कोई नहीं कर सकता। □

कश्मीर की एक घटना है। हमलोग एक दिन शिकारे में बैठकर 'डल' झील में घूम रहे थे। हमारे शिकारेवाला बड़ा मौजी आदमी था। डाँड चलाते-चलाते कोई तान छेड़ देता था और खूब जोर से गाता था। वह हमें तैरती खेती दिखाने ले गया। वहाँ कमल के बड़े-बड़े पत्तों और फूलों के बीच घूमता हुआ उस जगह आया, जहाँ एक सुन्दर लड़की तीर-सी पतली नाव पर बैठी अपने खेत देख रही थी।

शिकारेवाला बोला, "यह यहाँ के जमींदार की लड़की है। सब खेत इसी के हैं। बड़े ऊँचे दिमाग़ की है। आप बुलाओ तो नहीं आयेगी।"

हमने हाथ का इशारा किया। उसने मुंह फेर लिया।

शिकारेवाला ने कहा, "देखा ? अच्छा, अब मैं बुलाता हूँ।"

उसने कश्मीरी भाषा में कुछ कहा और हमारे देखते-देखते वह लडकी अपनी नाव को लेकर हमारे पास आ गई।

वह हमारी भाषा नहीं जानती थी। हम उसकी भाषा नहीं जानते थे। शिकारेवाले की मदद से हमने कई सवाल पूछे और उसने जवाब दिये। उसकी नाव पर बहुत-से कमलगट्टे और मक्की के भुट्टे रक्खे थे। हमने विनोद में कहा, "इन्हें हमें नहीं दोगी ?"

उसने मुस्कराते हुए बहुत-से भुटटे और कमलगट्टे हमारी ओर बढ़ा दिये।

उन्हें लेते हुए हमने पूछा, "इनके कितने पैसे हुए ?"

उसका चेहरा तमतमा आया। उसने हमारी ओर देखा और कहा, "बड़े ओछे आदमी हो ! ये मेरे खेत हैं। तुम मेरे मेहमान हो। पैसे की बात करते तुम्हें शर्म नहीं आती ? हम इतने गए-

बीते नहीं हैं।"

और हम कुछ कहें, उससे पहले ही वह अपनी नाव को तेजी से खेकर नौ-दो-ग्यारह हो गई। □

६० / आत्मनिर्भरता

पुराने ज़माने की बात है। अरब के लोगों में हातिमताई अपनी उदारता के लिए दूर-दूर तक मशहूर था। वह सबको खुले हाथों दान देता था। सब उसकी तारीफ़ करते थे।

एक बार उसने बहुत बड़ी दावत दी। जो चाहे, वह उसमें शामिल हो सकता था। हातिमताई कुछ सरदारों को लेकर दूर के मेहमानों को बुलावा देने चला। रास्ते में देखता क्या है कि एक लकड़हारे ने लकड़ियाँ काटकर एक गट्ठर तैयार किया है। उसकी गुजर-बसर लकड़ियाँ बेचकर ही होती थी। वह पसीना-पसीना हो रहा था; थककर चूर-चूर हो गया था।

हातिमताई ने उससे कहा, "ओ भाई! जब हातिमताई दावत देता है, तो तुम क्यों इतनी मेहनत करते हो? दावत में शरीक क्यों नहीं हो जाते?"

लकड़हारे ने जवाब दिया, "जो अपनी रोटी आप कमाते हैं, उन्हें हातिमताई की उदारता नहीं चाहिए।"

हातिमताई भौचक्का होकर उसे देखता रह गया। □

किसी गाँव में एक किसान रहता था। थोड़ी-सी उसकी खेती-बाड़ी थी। उससे जो कुछ मिल जाता, उसी से वह अपनी छोटी-सी गिरस्ती की गुज़र-बसर कर लेता। कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता था।

संयोग की बात कि उस किसान का एक बैल मर गया। बेचारा बड़ी परेशानी में पड़ गया। खेत का बोना ज़रूरी था, पर बोये कैसे? बैल तो एक ही रह गया था। बहुत सोचा और अन्त में उसने किया क्या कि हल के जुए में एक ओर बैल जोता, दूसरी ओर अपनी स्त्री, और काम करने लगा।

उसी समय वहाँ का राजा अपनी रानी के साथ रथ पर उधर से गुजरा। अचानक उसकी निगाह हल पर गई, जिसके जुए में एक तरफ बैल और दूसरी तरफ़ स्त्री थी। उसे बड़ा अचरज हुआ, साथ ही दुःख भी। उसने रथ को रोका और किसान के पास जाकर कहा, "यह तुम क्या कर रहे हो?"

किसान ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। बोला, "मेरा एक बैल मर गया है और खेत को बोना जरूरी है।"

राजा ने कहा, "भलेमानस! कहीं स्त्री से बैल का काम लिया जाता है?"

किसान बोला, "क्या करूँ! और उपाय ही क्या है?"

"उपाय?" राजा ने कहा, "तुम एक बैल मेरा ले लो। जाओ!"

किसान बोला, "मेरे पास इतना समय नहीं है।"

इतना कहकर उसने बैल को आगे बढ़ा दिया।

राजा ने कहा, "सुनो भाई! तुम अपनी स्त्री को बैल लाने भेज दो। जबतक वह आवे, तबतक मैं उसकी जगह काम

करूँगा।"

किसान की स्त्री ने कहा, "तुम तो बैल देने को तैयार हो, पर तुम्हारी औरत ने इन्कार कर दिया तो?"

राजा बोला, "नहीं, ऐसा नहीं होगा।"

किसान राजी हो गया। उसकी स्त्री बैल लेने चली गई और राजा ने हल का जुआ अपने कन्धे पर रख लिया।

किसान की स्त्री ने जब रानी के पास जाकर राजा की बात कही तो वह बोली, "बहन! एक बैल से कैसे काम चलेगा! तुम्हारा बैल कमज़ोर है। हमारा बैल मज़बूत है। दोनों साथ काम नहीं कर सकेंगे। तुम हमारे दोनों बैलों को ले जाओ।"

स्त्री बड़ी लज्जित हुई। उसे तो डर था कि वह कहीं एक बैल भी देने से इंकर न कर दे। यहाँ एक छोड़, दोनों को देने के लिए रानी तैयार थी।

बैल लेकर स्त्री आई और पूरे खेत की बुवाई हो गई।

फसल उगी। किसान ने देखा तो अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका। सारे खेत में अनाज पैदा हुआ, लेकिन जितनी जमीन में राजा ने हल चलाया था और उसका पसीना गिरा था, उतनी जमीन में मोती उगे थे।

यह करामात सच्ची मेहनत की थी। जहाँ राजा जनता की सेवा में अपना पसीना बहाता है, वहाँ ऐसा ही फल मिलता है।□

६२ / जहाँ चाह वहाँ राह

एक लड़की थी। वह जन्म से ही न देख सकती थी, न सुन सकती थी, न बोल सकती थी। अन्धी, बहरी और गूँगी थी।

उसके माता-पिता बड़े हैरान हुए। आखिर ऐसी लड़की की जिन्दगी कैसे कटेगी ? बड़े होने पर स्वयं लड़की को जीना दूभर हो गया। हर काम के लिए उसे दूसरों का मुँह देखना पड़ता था। हर चीज के लिए उसे दूसरों के सहारे की जरूरत पड़ती थी। पर वह करे तो क्या करे ! उसे कोई रास्ता ही नहीं सूझता था।

यह रास्ता सुझाया उसकी एक सहेली ने। वह उसके पास आ गई। एक दिन लड़की ने पानी माँगा। सहेली ने पिला दिया। दूसरी बार माँगा तो उसने कह दिया, अपने-आप पी ले। लड़की को बड़ा बुरा लगा। मन मारकर वह उठी और टटोलते-टटोलते वह पानी तक पहुँच गई। अपने हाथ से पानी लेकर पीने में उसे अच्छा लगा। इसी तरह एक बार सहेली ने उसे कपड़े पहना दिये। दूसरी बार कह दिया, अपने-आप पहन ले। लड़की ने जैसे-तैसे कपड़े पहने, पर उसे पहनने पर खुशी हुई।

एक दिन वह उसे घुमाने साथ ले गई। दूसरे दिन उसे अकेला छोड़ दिया। वह होशियारी से कदम रखती हुई घर आ गई। इस तरह अपनी समझदारी से सहेली ने उसके अन्दर आत्मविश्वास पैदा कर दिया कि कोई भी काम ऐसा नहीं है कि वह खुद न कर सके।

फिर क्या था ! उस लड़की की जिन्दगी एक नई दिशा में मुड़ गई। उसने ऊँची-से-ऊँची पढ़ाई की, कई भाषाएँ सीखीं, शोध की, डाक्टर की उपाधि ली, कई किताबें लिखीं। इतना ही नहीं, वह सारी दुनिया में घूमी। उसने वह काम कर दिखाया, जिसे आँख, कान और जीभ रखने वाले बहुत-से लोग नहीं कर पाते।

अपनी एक पुस्तक में उसने लिखा है, "किसी को भी निराश नहीं होना चाहिए। उससे इन्सान के अन्दर ग़रीबी, अज्ञान और बुराई के खिलाफ लड़ने की जो प्रेरणा होती है, वह खत्म हो जाती

है, संसार में बहते आनन्द के सोते सूख जाते हैं।"

उसने यह भी लिखा है, "इच्छा, साहस और मेहनत लोगों को वहाँ पहुँचा देते हैं, जहाँ पहुँचने की वह सोच भी नहीं सकता।"

यह लड़की थी हेलन केलर, जिसे सारी दुनिया जानती है। □

६३ / निर्मल बुद्धि

बचपन में गांधीजी को लोग 'मोनिया' कहकर पुकारते थे। प्यार से 'मोहन' की जगह यह नाम लेते थे।

मोनिया का शरीर दुबला था। उसे पेड़ों पर चढ़ना बहुत अच्छा लगता था। मन्दिर के आँगन में पपीते और अमरूद के पेड़ थे। मोनिया उन पर चढ़कर पके फल तोड़ लाता। गिरने के डर से पिता उसे पेड़ पर चढ़ते से मना करते, लेकिन उसका मन न मानता।

एक दिन मौका देखकर वह अमरूद के पेड़ पर चढ़ गया। संयोग से उसी समय उसके बड़े भाई आ गये। उन्होंने उसकी टाँग पकड़कर नीचे खींच लिया और कुछ चपतें रसीद कर दीं।

मोनिया रोता हुआ माँ के पास पहुँचा, बोला, "माँ, भाई ने मुझे मारा है।"

माँ ने सहज भाव से कह दिया, "उसने तुझे मारा है, तो तू भी उसे मार।"

माँ का यह कहना था कि मोनिया का रोना रुक गया। गम्भीर होकर बोला, "ऐसा तुम कहती हो, माँ! मैं मारूँ! बड़े भाई पर हाथ उठाऊँ।"

माँ ने हँसकर कहा, "अरे, इसमें क्या बात है! बच्चों में

आपस में लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट होती ही रहती है।"

मोनिया ने क्षण-भर माँ की ओर देखा, फिर बोला, "तुम कैसी हो, माँ! बड़े को मारने की सीख देती हो! भाई मुझसे बड़े हैं। वह मुझे भले ही मार लें, मैं उन्हें नहीं मारूँगा।"

माँ यह सुनकर चकित रह गईं। उन्होंने मारने की बात तो यों ही कह दी थी। वह कुछ कहें कि मोनिया आगे बोला, "माँ, जो मारता है, उसे तुम क्यों नहीं रोकतीं? उससे तुम्हें कहना चाहिए कि वह न मारे, न मार खानेवाले से कहो कि वह भी मारे।"

माँ का दिल भर आया। बेटे की निर्मल बुद्धि पर उनकी छाती गर्व से फूल उठी। उसे सीने से लगाकर वह इतना ही कह सकीं, "बेटे! तुझे ऐसी बातें कौन सिखाता है? पता नहीं, विधाता ने तेरे लिए क्या लिख रक्खा है!" □

६४ / धर्म और दुकानदारी

एक दिन एक पण्डित कथा कह रहे थे। बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। मर्द, औरतें, बच्चे सब ध्यान से पण्डितजी की बातें सुन रहे थे।

पण्डितजी ने कहा, "इस दुनिया में जितने प्राणी हैं, सबमें आत्मा है। सारे जीव एक-समान हैं।"

भीड़ में एक लड़का और उसका बाप बैठा था। पण्डितजी की बात लड़के को बहुत पसन्द आई और उसने गाँठ बाँध ली।

अगले दिन लड़का दुकान पर गया। थोड़ी देर में एक गाय आई और दुकान के सामने रखे अनाज को खाने लगी। लड़के ने

उसे देखा तो उसको पण्डितजी की बात याद आ गयी। उसने कहा, "ठीक है, हममें और गाय में अन्तर ही क्या है ? यह खाती है ! तो खाय।"

उसी समय उसका बाप आ गया। गाय को अनाज खाते और लड़के को चुपचाप बैठे देखकर उसका पारा चढ़ गया। उसने कहा, "मूर्ख ! देखता नहीं, गाय नुकसान कर रही है ?"

लड़के ने कहा, "पिताजी, कल आपने पण्डितजी से सुना था न, सब जीव एक समान हैं ?"

बाप ने उसके कसकर दो चाँटे जमाये और बोला, "अरे बुद्धू, बात सुनने की थी, दुकान चलाने की नहीं। अगर तूने आगे ऐसा किया तो दुकान का सफाया हो जायगा।"

बाप की बात सच थी। धर्म और व्यापार साथ नहीं चलते। □

६५ / कोशिश का नतीजा

एक राजा था। उस पर उसके दुश्मन ने हमला किया। राजा हार गया और अपने राज्य से भागकर एक गुफा में जा छिपा। अपना राज्य पाने की उसे कोई आशा न रही। गुफा में बैठा वह बीते दिनों की याद करता और बेचैन होता।

एक दिन अचानक उसने देखा कि सामने की दीवार पर एक कीड़ा बार-बार ऊपर चढ़ने की कोशिश कर रहा है। चढ़ता और नीचे गिर पड़ता। फिर चढ़ता, फिर गिर पड़ता। इस तरह वह छः बार चढ़ा और छः बार गिरा, फिर भी उसने अपनी कोशिश नहीं छोड़ी। सातवीं बार उसने फिर जोर लगाया और इस बार वह ऊपर पहुँच गया।

राजा ने सोचा—इस छोटे-से कीड़े ने हार नहीं मानी। ऊपर पहुँचकर ही माना। आखिर मैं तो आदमी हूँ। कोशिश करूँगा तो कोई वजह नहीं कि मेरी जीत न हो।

यह सोचकर वह गुफा से बाहर निकला। उसने अपनी बिखरी सेना को इकट्ठा किया। फिर से अपने राज्य को जीतने की कोशिश कीं। कीड़े ने उसके दिल में भरोसा पैदा कर दिया था कि उसको अवश्य सफलता मिलेगी, और उसने सचमुच दुश्मन को हराकर फिर अपना राज्य प्राप्त कर लिया। □

६६ / कछुआ गुरु

किसी नगर में गंगा के किनारे एक बूढ़ा आदमी रहता था। उसने अपनी छोटी-सी झोंपड़ी बना ली थी और एक कछुआ पाल रखा था। वह दोपहर को रोटी माँगने जाता तो कुछ चने भी ले आता और उन्हें भिगोकर कछुए को खिला देता।

एक दिन एक आदमी उसके पास आया। कछुए को देखकर बोला, "आपने यह क्या गन्दा जीव पाल रखा है। इसे फेंक दो।"

बूढ़े को उसकी बात सुनकर बड़ा बुरा लगा। उसने कहा, "तुम मेरे गुरु का अपमान करते हो!"

वह आदमी बोला, "गुरु का अपमान ?"

"हाँ, जी," बूढ़े ने कहा, "यह मेरा गुरु ही है। देखते नहीं, जरा भी आहट होती है, तो यह अपने सारे अंग सिकोड़ लेता है। यह हमें हर घड़ी सिखाता रहता है कि लोभ-लालच आए तो अपने हाथ-पैर सिकोड लो। बुराई से बचो। ये ही बातें तो गुरु कहा करते हैं।" □

६७ / तोड़ो नहीं, जोड़ो

अंगुलिमाल नाम का एक बहुत बड़ा डाकू था। वह लोगों को मारकर उनकी उँगलियाँ काट लेता था और उनकी माला पहनता था। इसी से उसका यह नाम पड़ा था। आदमियों को लूट लेना, उनकी जान ले लेना, उसके बाएँ हाथ का खेल था। लोग उससे डरते थे। उसका नाम सुनते ही उनके प्राण सूख जाते थे।

संयोग से एक बार भगवान् बुद्ध उपदेश देते हुए उधर आ निकले। लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि वह वहाँ से चले जाएँ। अंगुलिमाल ऐसा डाकू है, जो किसी के भी आगे नहीं झुकता।

बुद्ध ने लोगों की बात सुनी, पर उन्होंने अपना इरादा नहीं बदला। वह बेधड़क घूमने लगे।

जब अंगुलिमाल को इसका पता चला तो वह झुंझलाकर बुद्ध के पास आया। वह उन्हें मार डालना चाहता था, लेकिन जब उसने बुद्ध को मुस्कराकर प्यार से उसका स्वागत करते देखा तो उसका पत्थर का दिल कुछ मुलायम हो गया।

बुद्ध ने उससे कहा, "क्यों भाई, सामने के पेड़ से चार पत्ते तोड़ लाओगे ?"

अंगुलिमाल के लिए यह क्या मुश्किल था ! वह दौड़कर गया और जरा-सी देर में पत्ते तोड़कर ले आया।

बुद्ध ने कहा, "अब एक काम और करो। जहाँ से इन पत्तों को तोड़कर लाये हो, वहीं इन्हें लगा आओ।"

अंगुलिमाल बोला, "यह कैसे हो सकता है ?"

बुद्ध ने कहा, "भैया ! जब तुम जानते हो कि टूटा जुड़ता नहीं तो फिर तोड़ने का काम क्यों करते हो ?"

इतना सुनते ही अंगुलिमाल को बोध हो गया और वह उस दिन से अपना धन्धा छोड़कर बुद्ध की शरण में आ गया। □

९८ / बालक की सत्यनिष्ठा

एक किसान था। उसके एक लड़का था। लड़का बड़ा नटखट था। एक दिन उसके पिता ने उसे एक कुल्हाड़ी दी। लड़का कुल्हाड़ी लेकर बग़ीचे में गया। वहाँ जो भी पेड़ उसके सामने आता उसी पर कुल्हाड़ी चला देता। उसके पिता ने फल का एक वृक्ष लगाया था। बड़ी कठिनाई के बाद वह बड़ा हुआ था। लडके ने उस पर भी कुल्हाड़ी जमा दी।

इस तरह वह कुल्हाड़ी का खेल खेलकर खुशी-खुशी घर लौट आया।

उसके आने के बाद उसका पिता बग़ीचे में गया। देखता क्या है, बगीचे के बहुत-से पेड़ कटे पड़े हैं। उनमें वह फल का पेड़ भी था, जिसे उसने बड़ी मेहनत और ममता से बड़ा किया था। उसे बहुत दुःख हुआ। उसने मालियों को बुलाया और डाँटकर उनसे पूछा, "यह किसकी करतूत है ?"

माली एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। उन्होंने कहा, "हम तो बाग़ की देखभाल करते हैं। हम भला पेड़ क्यों काटेंगे !"

इतने में लड़के ने वहाँ आकर कहा, "यह काम मैंने किया है। आपने कुल्हाड़ी दी थी। मैंने यह देखना चाहा कि मैं पेड़ काट सकता हूँ या नहीं। फलों के इस पेड़ पर मैंने ही कुल्हाड़ी मारी थी। वह कट गया।"

पिता ने कहा, "मैंने कुल्हाड़ी तुझको इस काम के लिए थोड़े ही दी थी। खैर, तुमने सारी बात सच-सच कह दी, इससे मुझे बड़ा अच्छा लगा। आगे ऐसा मत करना।"

यह बालक था वाशिंगटन, जो आगे चलकर अमरीका का राष्ट्रपति बना। □

यूनान की बात है। वहाँ एक बार बहुत बड़ी प्रदर्शनी लगी थी। उस प्रदर्शनी में अपोलो की बहुत ही सुन्दर मूर्ति थी। अपोलो को यूनानी अपना ईश्वर मानते हैं। वहाँ राजा और रानी प्रदर्शन देखने आये। उन्हें वह मूर्ति बड़ी अच्छी लगी। राजा ने पूछा, "यह किसने बनाई है।"

सब चुप। किसी को यह पता नहीं था कि उसका बनानेवाला कौन है। थोड़ी देर में ही सिपाही एक लड़की को पकड़ लाये। उन्होंने राजा से कहा, "इसे पता है कि यह मूर्ति क़िसने बनाई है, पर यह बताती नहीं।"

राजा ने उससे बार-बार पूछा, लेकिन उसने बताया नहीं। तब राजा ने गुस्से में भरकर कहा, "इसे जेल में डाल दो।"

यह सुनते ही एक नौजवान सामने आया। राजा के पैरों में गिरकर बोला, "आप मेरी बहन को छोड़ दीजिये। कसूर इसका नहीं, मेरा है। मुझे दण्ड दीजिए। यह मूर्ति मैंने बनाई है।"

राजा ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

उसने कहा, "मैं ग़ुलाम हूँ।"

उसके इतना कहते ही लोग उत्तेजित हो उठे। एक ग़ुलाम की इतनी हिमाक़त की भगवान की मूर्ति बनाए। वे मारने दौड़े।

राजा बड़ा कलाप्रेमी था। उसने लोगों को रोका और बोला, "तुम लोग शान्त हो जाओ। देखते नहीं, मूर्ति क्या कह रही है ? वह कहती है कि भगवान् के दरबार में सब बराबर हैं।"

राजा ने बड़े आदर से कलाकार को ईनाम देकर विदा किया। □

आस्ट्रेलिया की एक घटना है। उसके पश्चिमी किनारे से छः मील की दूरी पर एक जहाज चट्टान से टकरा गया। जहाज़ के सारे कर्मचारी बड़ी तत्परता से सुरक्षा का काम करने लगे। जहाज़ में साढ़े चार सौ मुसाफ़िर थे। वे सब शान्ति से अपनी-अपनी जगह पर रहे।

इतने में जहाज़ के अधिकारी ने हुक्म दिया, "डोंगियों पर चढ़ो!"

सारे मुसाफ़िरों ने सुरक्षा की पेटियाँ पहन लीं। उनमें एक आदमी नेत्रहीन था। वह अपने नौकर का हाथ थामे डेक पर आया। एक आदमी बीमार था। वह भी किसी का सहारा लेकर आया। सबलोगों ने एक ओर हटकर उनके लिए रास्ता कर दिया। अपनी-अपनी बारी से वे सब नावों में उतर गये। जहाज़ खाली हो गया। फिर उनके देखते-देखते वह समुद्र के पेट में समा गया।

डोंगी पर बैठी एक स्त्री गाने लगी:

'प्यारे नाविक, बढ़ो किनारा पास है।
कर्म करो जबतक इस तन में साँस है।
यह जीवन साहस का दूजा नाम है—
प्यारे नाविक, बढ़ो किनारा पास है।'

मल्लाहों का हौसला बढ़ गया और सारे यात्री सकुशल किनारे पर पहुँच गये। यदि मुसाफ़िर घबरा गये होते और उन्होंने धीरज न रखा होता, तो उनमें से बहुतों की जानें चली गयी होतीं। □

१०१ / हिम्मत का फल

एक आदमी था। उसका नाम कोलम्बस था। वह एक छोटा-सा जहाज़ लेकर नयी दुनिया की खोज करने के लिए निकल पड़ा। अचानक समुद्र में तूफ़ान आ गया। तीन दिन तक उसका जहाज़ लहरों से टक्कर लेता रहा। इतने में जहाज़ का एक मस्तूल खराब हो गया। उन दिनों जहाज़ इंजन से नहीं चलते थे। ऊँची बल्ली लगाकर पाल तान देते थे। पाल में हवा भर जाती थी और उससे जहाज़ चलते थे। मस्तूल के खराब होने का मतलब था जहाज को ख़तरा, आदमियों की जान को खतरा। साथी घबरा गये। उन्होंने कहा, "हम अब आगे नहीं जायगे।"

कोलम्बस बड़ा हिम्मती था। उसने कहा, "तूफ़ान हमारी परीक्षा ले रहा है। हम हार नहीं मानेंगे।"

साथियों की खोई हिम्मत लौट आयी। पर ज़रा आगे बढ़े कि उनकी कुतुबनुमा दिशा बतानेवाली घड़ी बिगड़ गयी। उसके खराब होने से यह पता चलना कठिन हो गया कि वे किधर जा रहे हैं। फिर भी कोलम्बस के चेहरे पर शिकन तक न आई। उसने साथियों से कहा, "मैं कहता हूं, कितनी भी मुश्किलें आएं, पर जीत हमारी होगी।"

उसकी बात ठीक निकली। वे आगे बढ़ते गये और उन्हें नयी दुनिया मिल गयी, जिसकी तलाश में वे निकले थे। किसी ने सच कहा है—जहाँ हौसला है, वहाँ सफलता है। □

१०२ / सच्ची वीरता

बहुत पुरानी बात है। किसी पहाड़ी प्रदेश में एक राजा राज करता था। एक बार उसके राज्य पर दूसरे राजा ने चढ़ाई कर दी। उसे भगाने के लिए राजा ने एक सेना तैयार की। उसमें जो लोग भरती हुए, उन सबको एक-एक तलवार दी। फिर राजा ने आदेश दिया, "आगे बढ़ो!"

उसी समय सबलोगों ने अपनी-अपनी तलवार म्यान से निकालकर ऊपर उठाई और जोर की आवाज की।

राजा ने पूछा, "यह क्या कर रहे हैं आप लोग?"

वे बोले, "राजन्! हम अपने दुश्मन को दिखाना चाहते हैं कि हमलोग तैयार हैं। तुम वापस चले जाओ।"

राजा समझ गया कि वे लोग घबराये हुए हैं और अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। उसने कहा, "तुम लोग तलवारें यहाँ रख दो और लौट जाओ। तुमसे कुछ नहीं होगा।"

राजा ने यह ठीक ही किया। वह जानता था कि सच्ची वीरता में शोर मचाने और तलवारें उछालने की जरूरत नहीं होती। □

१०३ / सन्तों की महिमा

महर्षि रमण को कौन नहीं जानता! वह बहुत ऊँचे आदमी थे। अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे। उनके तन पर कोपीन को छोड़कर कोई कपड़ा नहीं रहता था।

एक बार उनकी कोपीन फट गयी। वह किसी से कुछ भी

नहीं माँगते थे। जबतक बिना माँगे कोई न दे जाय, तबतक उन्हें इसी कोपीन से काम चलाना था। पर फटी कोपीन को कैसे पहनें? उसे उन्होंने सीने का निश्चय किया, पर इसके लिए सुई-डोरे की ज़रूरत थी। उन्हें भी वह माँग नहीं सकते थे। तब उन्होंने बबूल के दो काँटे लिए। एक से दूसरे काँटे में छेद किया, फिर कोपीन में से धागे निकाले, उन्हें बटा, डोरा बनाया। उस डोरे को काँटे के छेद में डालकर फटी कोपीन को सी लिया और बड़े आनन्द से उसे काम में लाते रहे।

सन्तों की महिमा अपरम्पार है। □

१०४ / व्यर्थ की लड़ाई

एक आदमी के पास बड़ी जायदाद थी। उसके कारण रोज कोई-न-कोई झगड़ा लगा रहता था। बेचारा वकीलों और अदालत के चक्कर के मारे हैरान था।

उसकी स्त्री अक्सर बीमार रहती थी। वह दवाइयाँ खा-खाकर जीती थी और डाक्टरों के मारे उसका नाक में दम था।

एक दिन पति-पत्नी में झगड़ा हो गया। पति ने कहा, "मैं लड़के को वकील बनाऊँगा, जिससे वह मुझे सहारा दे सके।"

स्त्री बोली, "मैं उसे डाक्टर बनाऊँगी, जिससे वह मेरी रात-दिन की परेशानी को दूर कर सके।"

दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़ गये। वह बढ़ती गयी तो दोनों चिल्ला-चिंल्लाकर बोलने लगे। उनकी आवाज़ सुनकर राह चलते लोग रुक गये। उन्होंने दोनों की बातें सुनीं। बोले,

"आखिर लड़के से तो पूछो कि वह क्या बनना चाहता है? बुलाओ उसे, हम पूछ देते हैं।"

उनका सवाल सुनकर पति-पत्नी का दिमाग ठण्डा पड़ गया। लडका था कहाँ! वह तो अभी पैदा होना था। □

१०५ / आखिरी दरवाजा

एक फ़क़ीर था। वह भीख माँगकर अपनी गुजर-बसर किया करता था। भीख माँगते-माँगते वह बूढ़ा हो गया। उसे आँखों से कम दीखने लगा।

एक दिन भीख माँगते हुए वह एक जगह पहुँचा और आवाज लगाई। किसी ने कहा, "आगे बढ़ो! यह ऐसे आदमी का घर नहीं है, जो तुम्हें कुछ दे सके।"

फ़क़ीर ने पूछा, "भैया! आखिर इस घर का मालिक कौन है, जो किसी को कुछ नहीं देता?"

उस आदमी ने कहा, "अरे पागल! तू इतना भी नहीं जानता कि यह मस्जिद है? इस घर का मालिक खुद अल्लाह है।"

फकीर के भीतर से तभी कोई बोल उठा—यह लो, आखिरी दरवाज़ा आ गया। इससे आगे अब और कोई दरवाजा कहाँ है?

इतना सुनकर फकीर ने कहा, "अब मैं यहाँ से खाली हाथ नहीं लौटूंगा। जो यहाँ से ख़ाली हाथ लौट गये, उनके भरे हाथों की भी क्या क़ीमत है?"

फ़क़ीर वहीं रुक गया और फिर कभी कहीं न गया। कुछ समय बाद जब उस बूढ़े फ़क़ीर का अन्तिम क्षण आया तो लोगों ने देखा, वह उस समय भी मस्ती में नाच रहा था। □

१०६ / समर्पण

सन्त राबिया एक बार बहुत बीमार हो गई। एक साधक उससे मिलने आया। राबिया की हालत देखकर उसे बड़ा बुरा लगा। पर कहे तो क्या कहे।

राबिया उसके मन की बात ताड़ गई। उन्होंने कहा, "तुम कुछ कहना चाहते हो। कहो।"

उस आदमी ने कहा, "तुम इतनी बीमार हो। ईश्वर से प्रार्थना करो, वह तुम्हारी बीमारी को दूर कर देंगे।"

राबिया उसकी बात सुनकर हँस पड़ी। बोली, "क्या तुम्हें पता नहीं कि बीमारी किसकी इच्छा से होती है? क्या मेरी बीमारी में प्रभु का हाथ नहीं है?"

आदमी बोला, "आप ठीक कहती हैं। बिना उसकी इच्छा के कुछ भी नहीं हो सकता।"

"तब", राबिया ने कहा, "तुम मुझसे कैसे कहते हो कि मैं उसकी इच्छा के खिलाफ़ बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उससे प्रार्थना करूँ? उसे जिस दिन ठीक करना होगा, अपने आप कर देगा।" □

१०७ / नशे का तमाशा

एक आदमी बड़ा शराबी था। शाम होते ही वह शराबघर में पहुँच जाता और खूब शराब पीता। एक दिन उसने इतनी चढ़ाई कि चलते समय उसे पूरा होश न रहा। वह साथ में लालटेन लाया था। उठाकर घर की ओर चल दिया। रास्ते में गहरा अँधेरा था। उसने लालटेन को इधर घुमाया, उधर घुमाया;

और जब उसे रोशनी न मिली तो उसने जी भरकर उसे गालियाँ दीं।

घर आकर उसने लालटेन को बाहर पटक दिया और घर के अन्दर जाकर सो गया।

सवेरे जैसे ही उठा तो देखता क्या है कि शराबघर का आदमी उसकी लालटेन लिये चला जा रहा है। उसे बड़ा अचरज हुआ कि वह लालटेन उसके हाथ में कैसे है!

पास आकर वह बोला, "महाशयजी, रात को आपने अच्छा तमाशा किया। अपनी लालटेन छोड़ आये और हमारा पिंजड़ा उठा लाये। लीजिये अपनी यह लालटेन और हमारा पिंजड़ा हमें दे दीजिये।"

यह सुनकर उस आदमी को अपनी भूल मालूम हुई। नशे में रात को सचमुच वह लालटेन नहीं, पिंजड़ा उठा लाया था। □

१०८ / मन्त्री की दूरदर्शिता

एक राजा था। उसका नाम था श्रेणिक। उसके चेलना नाम की एक रानी थी। एक बार वे दोनों भगवान् महावीर के दर्शन करके लौट रहे थे, तो रानी ने देखा, भयंकर शीत में एक मुनि तप में लीन हैं। उसने उनकी कठोर साधना के लिए मन-ही-मन बारम्बार प्रणाम किया।

महल में लौटकर रानी सो गई। संयोग से रानी का हाथ बिस्तर से नीचे लटक गया और सर्दी से अकड़ गया।

रानी की आँखें खुलीं तो उसकी बाह में बड़ा दर्द था। चूंकि सर्दी के कारण ऐसा हुआ था, इसलिए आग से उसका सेंक किया

गया।

जब सेंक किया जा रहा था, रानी को अचानक उस तपस्वी का ध्यान हो आया, जो जंगल में अविचल भाव से बैठा तपस्या कर रहा था। रानी के मुंह से अनायास निकला, "हाय! उस बेचारे का क्या हाल होगा?"

रानी के मुँह से ये शब्द निकलने थे कि राजा के मन में एकदम सन्देह पैदा हो गया। उन्होंने सोचा, हो-न-हो, रानी का लगाव और किसी से है। उन्होंने क्रोध से पागल होकर मन्त्री को आदेश दिया कि अन्तःपुर को जला दो।

इसके बाद राजा भगवान् महावीर के पास गये और उन्हें अपनी व्यथा कह सुनाई। महावीर ने कहा, "चेलना पतिव्रता है, पवित्र है।"

अब तो श्रेणिक का बुरा हाल हो गया। वह तत्काल लौटा और मन्त्री को बुलाकर पूछा, क्या उसने अन्तःपुर को जला दिया?

मन्त्री ने कहा, "जी हाँ, आपकी आज्ञा का तत्काल पालन कर देना आवश्यक था।"

राजा बड़ा दुःखी हुआ। उसका सारा क्रोध शान्त हो गया। तब मन्त्री ने कहा, "राजन्, आप दुःखी न हों। मैं जानता था कि आपने जो आदेश दिया है, वह क्रोध में दिया है। इसलिए मैंने हस्तिशाला को जला दिया, अन्तःपुर सुरक्षित है।"

राजा बहुत आनन्दित हुआ। उस दिन से उसने क्रोध में कभी कोई निर्णय नहीं किया। □

१०९ / क्रोध चाण्डाल होता है

एक पण्डितजी महाराज क्रोध न करने पर उपदेश दे रहे थे। कह रहे थे, "क्रोध आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है। उससे आदमी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिस आदमी में बुद्धि नहीं रहती, वह पशु बन जाता है।"

लोग बड़ी श्रद्धा से पण्डितजी का उपदेश सुन रहे थे। पण्डित जी ने कहा, "क्रोध चाण्डाल होता है। उससे हमेशा बचकर रहो।"

भीड़ में एक ओर को एक जमादार बैठा था, जिसे पण्डितजी प्रायः सड़क पर झाड़ू लगाते हुए देखा करते थे। अपना उपदेश समाप्त करके जब पण्डितजी जाने लगे तो जमादार भी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

लोगों की भक्ति-भावना से फूले हुए पण्डितजी भीड़ के बीच में से आगे आ रहे थे। इतने में पीछे से भीड़ का रेला आया और पण्डितजी गिरते-गिरते बचे! धक्के में वह जमादार से छू गये। फिर क्या था! उनका पारा चढ़ गया। बोले, "दुष्ट! तू यहाँ कहाँ से आ मरा? मैं भोजन करने जा रहा था। तूने छूकर मुझे गन्दा कर दिया। अब मुझे स्नान करना पड़ेगा।"

उन्होंने जमादार को जी भरकर गालियाँ दीं। असल में उनको बड़े जोर की भूख लगी थी और वह जल्दी-से-जल्दी यजमान के घर पहुँच जाना चाहते थे। पास ही में गंगा नदी थी। लाचार होकर पण्डितजी उस ओर तेज़ी से लपके।

तभी देखते क्या हैं कि जमादार उनसे आगे-आगे चला जा रहा है। पण्डितजी ने कड़ककर पूछा, "क्यों रे जमादार के बच्चे! तू कहाँ जा रहा है?"

जमादार ने जवाब दिया, "नदी में नहाने। अभी आपने कहा

था न कि क्रोध चाण्डाल होता है। मैं उस चाण्डाल को छू गया। इसलिए मुझे नहाना पड़ेगा।"

पण्डितजी को जैसे काठ मार गया। वह आगे एक भी शब्द न कह सके और जमादार का मुँह ताकते रह गये। □

११० / जहाँ चाह है वहाँ सुख नहीं

एक बार भगवान् बुद्ध अपना चातुर्मास पाटलिपुत्र में कर रहे थे। उनका उपदेश सुनने के लिए बहुत-से लोग आते थे।

एक दिन की बात कि प्रवचन के समय उनके शिष्य आनन्द ने पूछा, "भन्ते, आपके सामने हजारों लोग बैठे हैं। बताइये, इनमें सबसे सुखी कौन है?"

बुद्ध ने कहा, "वह देखो, सबसे पीछे दुबला-सा फटेहाल जो आदमी बैठा है, वह सबसे अधिक सुखी है।"

यह उत्तर सुनकर आनन्द का समाधान नहीं हुआ। उसने कहा, "यह कैसे हो सकता है?"

बुद्ध बोले, "अच्छा, अभी बताता हूँ!"

उन्होंने बारी-बारी से सामने बैठे लोगों से पूछा, "तुम्हें क्या चाहिए?"

किसी ने धन माँगा, किसी ने सन्तान, किसी ने बीमारी से मुक्ति माँगी, किसी ने अपने दुश्मन पर विजय माँगी, किसी ने मुकदमे में जीत की प्रार्थना की। एक भी आदमी ऐसा नहीं निकला, जिसने कुछ-न-कुछ माँगा न हो।

अन्त में उस फटेहाल आदमी की बारी आयी। बुद्ध ने पूछा, "कहो भाई, तुम्हें क्या चाहिए?"

उस आदमी ने कहा, "कुछ भी नहीं। अगर भगवान् को कुछ देना ही है तो बस इतना कर दें कि मेरे अन्दर कभी कुछ चाह ही पैदा न हो। मैं ऐसे ही अपने को बड़ा सुखी मानता हूँ।"

तब वुद्ध ने आनन्द से कहा, "आनन्द! जहाँ चाह है, वहाँ सुख नहीं हो सकता।" □

१११ / पसीने की कमाई

एक वार गुरुनानक घूमते हुए उज्जयिनी पहुँचे। उनका नाम सुनकर एक सेठ आया। उसके गले में रुद्राक्ष की माला पड़ी थी और माथे पर तिलक लगे थे। वह गुरुनानक के लिए तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन का थाल लाया था। गुरु ने थाल की ओर देखा और खाना खाने से इन्कार कर दिया।

इतने में एक लुहार वहाँ आया। वह जौ की दो रूखी रोटियाँ लाया था। गुरुनानक ने वे रोटियाँ ले लीं और बड़े आनन्द से खाने लगे।

सेठ ने आश्चर्य से गुरुनानक की ओर देखा, उसे वड़ा बुरा लगा। कहाँ वह, कहाँ लुहार, कहाँ उसका लाया भोजन और कहाँ लुहार की लायी दो मोटी-मोटी रोटियाँ!

जब नानक भोजन कर रहे थे, तो सेठ से न रहा गया। उसने कहा, "महाराज, यह कहाँ का न्याय है कि मैं पहले खाना लाया और इतना बढ़िया लाया, पर आपने उसे लेने से इन्कार कर दिया और इस लुहार की रूखी रोटियाँ प्रेम से खा रहे हैं।"

नानक थोड़ा रुके, फिर बोले, "इस लुहार की कमाई अपनी मेहनत की कमाई है, पवित्र कमाई है, जबकि तेरी कमाई तेरे

पसीने की नहीं है, इसे पवित्र नहीं कहा जा सकता।"

सेठ ने कहा, "नहीं जी, ऐसा नहीं है।

गुरुनानक ने कहा, "है, ले देख।"

इतना कहकर गुरुनानक ने लुहार की रोटी को दोनों हाथों के बीच में रखकर निचोड़ा तो उसमें से दूध की धार निकली, फिर सेठ के थाल में से एक मालपुआ उठाकर उसी तरह निचोड़ा तो उसमें से रक्त निकला।

सेठ को काटो तो ख़ून नहीं, वह लज्जा से सिर झुकाकर अपना थाल लेकर चला गया। □

११२ / चार चौकीदार

एक राजा था। उसका राज्य दूर-दूर तक फैला था। उसके राज्य में बहुत-से उद्योग-धन्धे थे, पढ़े-लिखे लोग थे। लेकिन कहीं भी उपद्रव नहीं होते थे। प्रजा बहुत ही सुखी थी।

उसके राज्य से सटा एक दूसरे राजा का छोटा-सा राज्य था। लेकिन उसमें आए दिन झगड़े होते थे। लोग आपस में लड़ते थे। प्रजा उसकी बहुत ही दुःखी थी। राजा हैरान था।

एक दिन वह राजा दूसरे राजा के पास आया। बातचीत में उसने कहा, "मेरा छोटा-सा राज्य है पर उसमें रोज़ उत्पात होते रहते हैं, प्रजा परेशान है। आपका राज्य इतना बड़ा है, फिर भी यहाँ पूर्ण शान्ति है, इसका कारण क्या है?"

राजा हँसा। बोला, "आप ठीक कहते हैं। मेरे राज्य में बड़ा चैन है। उसका कारण यह है कि मैंने चार चौकीदार तैनात कर रक्खे हैं, जो हर घड़ी मेरी रक्षा करते रहते हैं।"

दूसरे ने कहा, "बस, चार, मेरे यहाँ तो चौकीदारों की फौज है। आपका काम चार से कैसे चल जाता है?"

राजा ने कहा, "जी, मेरे रक्षक दूसरी तरह के हैं।"

"कैसे?" दूसरे राजा ने उत्सुकता से पूछा।

राजा ने उत्तर दिया, "पहला रक्षक है सत्य। वह मुझे असत्य नहीं बोलने देता।"

"और दूसरा?"

राजा ने कहा, "दूसरा है प्रेम। वह मुझे घृणा से बचाता है।"

"तीसरा?"

राजा बोला, "तीसरा है न्याय। वह मुझे अन्याय नहीं करने देता।"

"और चौथा?"

राजा ने गम्भीर होकर कहा, "चौथा है त्याग। वह स्वार्थ होने से मेरी रक्षा करता।"

राजा की शंका का समाधान हो गया। जिस राजा के सत्य, प्रेम, न्याय और त्याग, चौकीदार होते हैं, उसे कोई हैरानी नहीं हो सकती। □

११३ / सन्त की कामना

राबिया बड़े ऊँचे दरजे की सन्त थीं। एक बार उन्होंने रोज़ा रक्खा। सात दिन तक रात-दिन कुछ भी न खाया। आठवें दिन भूख लगी, तो कोई एक प्याले में रसा रख गया। राबिया चिराग़ जलाने को उठीं तो एक बिल्ली ने प्याला उलट दिया।

राबिया ने मन-ही-मन कहा, "कोई बात नहीं, मैं पानी से रोज़ा खोल लूंगी।"

जैसे ही खोलने को हुई कि चिराग़ बुझ गया और आबखोरा हाथ से गिरकर टूट गया।

राबिया को बड़ा दुःख हुआ। रोकर बोलीं, "ओ परवरदिगार ! तू मेरे साथ यह क्या कर रहा है ?"

कहीं से आवाज आयी, "ओ राबिया, अगर तू चाहती है कि मैं दुनिया की नियामतें तुझे दूं तो ठहर, अपना ग़म मैं तेरे दिल से निकाल लूं।"

राबिया चुपचाप उस आवाज़ को सुनती रहीं।

उसने आगे कहा, "राबिया, देख तेरी एक मुराद है और मेरी भी एक मुराद है। ये दोनों मुरादें एक जगह नहीं रह सकतीं। हमारे ग़म और नियामतें एक ही दिल में मुमकिन नहीं हो सकते।"

उस दिन से राबिया ने अपना दिल दुनिया से एकदम हटा लिया। वह हर घड़ी अल्लाताला से मिन्नत करतीं, "ऐ ख़ुदा ! मेरे दिल को तू अपनी तरफ़ ही लगाए रख, जिससे दुनिया उसे अपनी तरफ़ न खींच सके।" □

११४ / अहंकार का रहस्य

एक राजा था। उसके एक लड़की थी। जब राजकुमारी बड़ी हुई तो रानी को उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। वह राजा से बार-बार कहती कि लड़की सयानी हो गयी है, अच्छा वर ढूंढ़कर उसके हाथ पीले कर दो।

राजा के महल में एक जमादारिन सफ़ाई करने आती थी। एक दिन रानी को उदास देखकर उसने कारण पूछा, तो रानी ने कहा, "क्या कहूँ ? लड़की बड़ी हो गयी है। उसके ब्याह की चिन्ता मुझे रात-दिन खाये जा रही है।"

सुनकर जमादारिन हँस पड़ी। बोली, "रानीजी, आप चिन्ता क्यों करती हैं, मेरा लड़का जो है।"

उसकी बात सुनकर रानी को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा, "ख़बरदार, जो ऐसी बात मुँह से निकाली !"

जमादारिन चली गयी। अगले दिन आयी तो उसने पूछा, "कोई लड़का मिला ?"

रानी ने कहा, "नहीं।"

जमादारिन बिना संकोच से बोली, "आप तो बेकार हैरान होती हैं, मेरे लड़के की बराबरी कोई नहीं कर सकता।"

रानी पिछले दिन से और ज़्यादा नाराज़ हुई और उसे महल से निकलवा दिया।

रात को राजा जब महल में आये, तो रानी ने जमादारिन की गुस्ताखी उन्हें बताई।

सुनकर राजा ने पूछा, "वह कहाँ खड़े होकर बात कर रही थी ?"

रानी ने बता दिया। राजा ने कहा, "रानी, तुम समझती नहीं, जमादारिन नहीं, और कोई बोलता था।"

रानी ने माथे पर सलवटें डालकर आश्चर्य से कहा, "और कोई वहाँ था ही नहीं।"

राजा ने कहा, "अच्छा !"

अगले दिन राजा ने वह जगह खुदवाई, तो वहाँ अशर्फियों से भरे कलश निकले। कलश निकलवाकर राजा ने रानी से कहा, "अब तुम जमादारिन से बात करना।"

दूसरे दिन जमादारिन आयी, तो रानी ने फिर बेटी के ब्याह की चर्चा चलायी। जमादारिन ने कोई जवाब नहीं दिया। रानी ने कहा, "अरे, तेरे लड़के का क्या हुआ ?"

जमादारिन गिड़गिड़ाकर बोली, "रानी जी, कहाँ आप, कहाँ हम !"

रानी समझ गई कि जमादारिन के अहंकार का रहस्य क्या था ! □

११५ / सेवा का आदर्श

एक बार युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ रचा। बहुत-से लोगों को आमन्त्रित किया। भगवान् कृष्ण भी आये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "सबलोग काम कर रहे हैं। मुझे भी कोई काम दे दीजिये।"

युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखकर कहा, "आपके लिए हमारे पास कोई काम नहीं है।"

कृष्ण बोले, "लेकिन मैं बेकार नहीं रहना चाहता। मुझे कुछ-न-कुछ काम तो दे ही दीजिये।"

युधिष्ठिर ने कहा, "मेरे पास तो कोई काम है नहीं। यदि आपको कुछ करना ही हो तो अपना काम आप स्वयं तलाश कर लीजिये।"

कृष्ण बोले, "ठीक है, मैंने अपना काम खोज लिया।"

युधिष्ठिर ने उत्सुकता से पूछा, "क्या काम खोज लिया !"

कृष्ण ने कहा, "मैं सबकी झूठी पत्तलें उठाऊँगा और सफ़ाई करूँगा।"

यह सुनकर युधिष्ठिर अवाक् रह गये। कृष्ण ने वही किया। सेवा से बढ़कर और क्या हो सकता था। □

११६ / आलस का नतीजा बुरा

किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहा करता था। बड़ा भला आदमी था, लेकिन साथ ही काम को टाला करता था। यह मानकर कि जो कुछ होता है भाग्य से होता है, वह अपने हाथ-पैर नहीं हिलाता था।

एक दिन एक साधु उसके घर आया। ब्राह्मण और उसकी घरवाली ने उसका ख़ूब आदर-सत्कार किया। साधु ने खुश होकर चलते समय ब्राह्मण से कहा, "तुम बहुत गरीब हो! लो मैं तुम्हें पारसपथरी देता हूँ। सात दिन के बाद मैं आऊँगा और इसे ले जाऊँगा। इस बीच तुम जितना सोना बनाना चाहो, बना लेना।"

ब्राह्मण ने पथरी ले ली। साधु चला गया। उसके जाने पर ब्राह्मण ने घर में लोहा खोजा, बहुत थोड़ा मिला। उसी को सोना बनाकर बेच आया और कुछ सामान खरीद लाया।

अगले दिन स्त्री के बहुत ज़ोर देने पर लोहा खरीदने बाज़ार में गया तो लोहा कुछ महँगा था। वह घर लौट आया। दो-तीन दिन बाद फिर बाज़ार गया तो पता चला कि लोहा तो अब पहले से भी महँगा है।

"कोई बात नहीं है," उसने सोचा, "एकाध दिन में भाव ज़रूर नीचा आ जायगा, तभी ख़रीदेंगे।"

किन्तु लोहा सस्ता नहीं हुआ और दिन निकलते गये।

आठवें दिन साधु आया और उसने अपनी पथरी माँगी। ब्राह्मण ने कहा, "महाराज, मेरा तो सारा समय यों ही निकल गया। अभी तो मैं कुछ भी सोना नहीं बना पाया। आप कृपा करके इस पथरी को कुछ दिन मेरे पास और छोड़ दीजिये।"

लेकिन साधु राज़ी नहीं हुआ। उसने कहा, "तुझ जैसा आदमी जीवन में कुछ नहीं कर सकता। तेरी जगह और कोई होता तो कुछ-का-कुछ कर डालता। जो आदमी समय का उपयोग करना नहीं जानता वह हमेशा दुःखी रहता है।"

ब्राह्मण पछताने लगा, पर अब क्या हो सकता था। साधु पथरी लेकर जा चुका था। □

११७ / तृप्ति भोग में नहीं, त्याग में

महाभारत में एक बड़ी मार्मिक कहानी है। एक बड़े प्रतापी राजा थे। उनका नाम था ययाति। उन्होंने जीवन-भर खूब भोग भोगे। बड़े आनन्द से जीवन बिताया।

लेकिन जब बुढ़ापा आया, तो उन्हें बड़ी चिन्ता होने लगी। अब वह क्या करें ?

बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने अपने लड़के को बुलाया और उससे कहा, "भोग की मेरी लालसा अभी पूरी नहीं हुई है। तुम एक काम करो। अपनी जवानी मुझे दे दो और मेरा बुढ़ापा तुम ले लो।"

पिता की सेवा करने का यह महान् अवसर था। लड़के ने बहुत ही खुश होकर पिता की बात मान ली।

ययाति जवान हो गये। बेटा वृद्ध हो गया। ययाति के जीवन

कम क्रम फिर चलने लगा।

एक दिन की बात है। ययाति बैठे हुए थे कि उनके सामने जैसे बिजली कौंधी। उन्हें एकदम बोध हुआ कि कामना की तृप्ति कभी भोग द्वारा नहीं हो सकती। उसकी तृप्ति त्याग द्वारा ही हो सकती है।

ययाति का कायापलट हो गया और उस दिन से उन्होंने भोग को छोड़कर त्याग का मार्ग अपना लिया। □

११८ / सन्तों की महिमा

एक बहुत बड़ी सन्त थीं। उनका नाम था राबिया। वह सादगी से रहती थीं और हर घड़ी अल्ला का नाम लेती रहती थीं। उनकी कुटिया में साधु-सन्तों की भीड़ लगी रहती थी। दूसरे लोग भी आते रहते थे।

एक दिन एक सन्त आया और रात को राबिया की कुटिया में ही रह गया। उसने देखा, राबिया ने अपने सोने के लिए एक बोरी बिछा ली और तकिये की जगह ईंट रख ली। फिर अल्ला का नाम लेती हुई अपने उस बिस्तर पर आराम से लेट गयीं।

उस सन्त ने देखा तो चकित रह गया। इतने ऊँचे दर्जे की सन्त और इतना कठोर जीवन! उसे बड़ा दुःख हुआ। वह रात-भर अपने बिस्तर पर पड़ा छटपटाता रहा। उसे एक पल को भी नींद नहीं आयी। पर राबिया तो लेटते ही गहरी नींद में सो गयीं।

सवेरे उठकर सन्त ने राबिया से कहा, "आप इतनी तकलीफ़

क्यों उठाती हैं ? मेरे कई अमीर दोस्त हैं, मैं उनसे कहकर आपके लिए एक अच्छा-सा बिस्तर भिजवा दूंगा ।"

राबिया ने उस आदमी के प्रेम के लिए आभार माना फिर बोलीं, "मेरे प्यारे भाई, क्या मुझे और तुम्हें अमीरों को देने वाला एक नहीं है ?"

सन्त ने कहा, "हाँ, एक ही है।"

राबिया बोलीं, "क्या वह हमें भूल गया है और दौलतमन्दों की उसे याद है ? नहीं है तो हम क्यों याद दिलायें ! हमें यह हाल पसन्द है, क्योंकि उसको यह पसन्द है ।" □

११६ / पहले अपने को पहचानो

एक बार दस लड़के यात्रा पर रवाना हुए। उन्होंने तय कर लिया कि अमुक स्थान पर उन्हें पहुँचना है। सब अपने-अपने हिसाब से चलने लगे। कोई तेज चलता तो कोई धीरे। सब अलग-अलग हो गये ।

शाम को सबों के मंजिल पर पहुँचने पर उन्होंने आपस में सलाह की कि पूरी टोली को गिन लेना चाहिए। कहीं कोई रास्ते में, तो नहीं रह गया।

एक लड़के ने सबको कतार में खड़ा कर दिया और लगा गिनने। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ। उसने कहा, "हम नौ हैं। दसवाँ कहीं रह गया।"

दूसरा बोला, "ठहरो, मैं गिनता हूँ। तुमसे भूल हो सकती है।"

उसने गिना, वही नौ।

अब क्या हो ! उनका एक साथी कहीं गुम हो गया। सब परेशान होकर एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।

तभी एक आदमी उधर से गुज़रा। उन्हें हैरान देखकर पूछा, "क्या बात है ?"

उन सबने अपनी हैरानी बता दी कि हम घर से दस चले थे अब नौ रह गये हैं।

उस आदमी ने उनपर एक निगाह डाली। बोला, "लो तुम्हारे खोये साथी को मिलाये देता हूँ।"

उसने सबको पंक्ति में खड़ा करके गिनना आरम्भ किया। वे पूरे दस निकले।

सारे लड़के बड़े खुश हुए। उन्होंने उस आदमी का आभार मानते हुए पूछा, "भाई, तुमने दसवाँ साथी कैसे मिला दिया।"

उस आदमी ने कहा, "भले आदमियो, तुममें से जो गिनता था वह अपने को छोड़ देता था। इसी से हिसाब गलत हो जाता था।"

उसका कहना सही था। हम अपने को भूल जाते हैं। इसी से दुनिया अधूरी दीखती है। इसी से वेदान्त का कथन है कि पहले अपने को पहचानो, फिर दुनिया को। □

१२० / लुकमान की ऊँचाई

हज़रत लुकमान बड़े ऊँचे दर्जे के आदमी थे। उनके दिल में न किसी के लिए ईर्ष्या थी, न किसी प्रकार का मोह। उनका मालिक उन्हें बहुत चाहता। जब भी कोई बढ़िया चीज आती वह लुकमान के लिए भेज देता। लुकमान ने अपने प्रेम से उसे

एकदम वश में कर लिया था।

एक दिन किसी ने मालिक को खरबूजे भेजे। मालिक ने फौरन लुकमान को बुलवाया। उनके आने पर मालिक ने छुरी लेकर एक खरबूजा काटा और एक फाँक लुकमान को दे दी। उन्होंने वह बड़े शौक से खा ली। मालिक ने दूसरी फाँक दी। लुकमान ने वह भी खा ली। इस तरह वह कई फाँकें खा गये। बाद में जो खरबूजा बचा, उसे मालिक ने खाया तो वह हैरान रह गया। खरबूजा एकदम बेस्वाद और कड़वा था।

मालिक ने आश्चर्य में भरकर हज़रत लुकमान से पूछा, "इस ज़हर को तुमने कैसे खाया ?"

लुकमान ने कहा, "मैंने आपके हाथ से बहुत ही बढ़िया चीज़ें खायी हैं। मेरे दिल को यह गवारा नहीं हुआ कि आपके हाथ से बेस्वाद या कड़वी चीज़ न खाऊँ! सच बात यह है कि सदा मिठास देने वाले हाथों ने इन खरबूजों में कड़वाहट छोड़ी ही कहाँ थी ! मैं किस बात की शिकायत करता !"

मालिक निरुत्तर होकर रह गये। □

१२१ / सच्ची दोस्ती

दो मित्र थे। वे बड़े बहादुर थे। उनमें से एक ने अपने बादशाह के अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई। बादशाह बड़ा ही कठोर और बेरहम था। उसको जब मालूम हुआ तो उसने उस नौजवान को फाँसी के तख़्ते पर लटका देने की आज्ञा दी।

नौजवान ने बादशाह से कहा, "आप जो कर रहे हैं, वह ठीक है। मैं खुशी-खुशी मौत की गोद में चला जाऊँगा। लेकिन

आप मुझे थोड़ी मोहलत दे दीजिये, जिससे मैं गाँव जाकर अपने बच्चों से मिल आऊँ।"

बादशाह ने कहा, "नहीं, मुझे तुम पर विश्वास नहीं है।"

उस नौजवान का मित्र वहाँ मौजूद था। वह आगे बढ़कर बोला, "मैं अपने इस दोस्त की ज़मानत देता हूँ। अगर यह लौटकर न आएँ, तो आप मुझे फाँसी पर चढ़वा दीजिये।"

बादशाह चकित रह गया। उसनें अबतक ऐसा कोई आदमी नहीं देखा था, जो दूसरें के लिए अपनी जान देने को तैयार हो जाय !

बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। छः घण्टे का समय उसे दे दिया। नौजवान घोड़े पर सवार होकर अपने गाँव को रवाना हो गया। मित्र जेलखाने भेज दिया गया।

नौजवान ने हिसाब लगाकर देखा कि वह पाँच घण्टे में लौट आएगा, लेकिन बच्चों से मिलकर जब वह वापस आ रहा था, उसका घोड़ा ठोकर खाकर गिर गया और फिर उठा ही नहीं। नौजवान के भी चोट आई। पर उसने हिम्मत नहीं हारी।

छः घण्टे बीते और वह नौजवान नहीं लौटा तो उसका मित्र बड़ा खुश हुआ। आख़िर इससे बढ़कर बात क्या होती कि मित्र मित्र के काम आए। वह भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि उसका मित्र न लौटे।

जिस समय मित्र को फाँसी के तख़्ते के पास ले जाया जा रहा था कि नौजवान वहाँ पहुँच गया। उसने मित्र से कहा, "लो, मैं आ गया। अब तुम घर जाओ। मुझे विदा दो।"

मित्र बोला, "यह नहीं हो सकता। तुम्हारी मियाद पूरी हो गई।"

नौजवान ने कहा, "यह तुम क्या कहते हो ? सजा तो मुझे मिली है।"

दोनों मित्रों की दोस्ती को बादशाह देख रहा था। उसकी आँखें डबडबा आईं। उसने उन दोनों को बुलाकर कहा, "तुम्हारी दोस्ती ने मेरे दिल पर बड़ा गहरा असर डाला है। जाओ, मैं तुम्हें माफ करता हूँ।"

उस दिन से बादशाह ने कभी किसी पर जुल्म नहीं किया। □

१२२ / दिखावे का दान

हज़रत उमर के जमाने की बात है। एक बार उनके शहर में आग लग गई। आग इतने जोरों की थी कि उसने शहर का बहुत बड़ा हिस्सा जला डाला। पानी से भी वह नहीं बुझी।

अन्त में हैरान होकर प्रजा के कुछ लोग बादशाह के पास आये और उनसे कहा कि आग किसी प्रकार भी नहीं बुझती।

उमर ने कहा, "यह आग खुना की नाराजी की निशानी है। यह तुम्हारी कंजूसी की आग का शोला है, इसलिए पानी रहने दो और रोटी बाँटना शुरू कर दो।"

जनता ने कहा, "हमने पहले से ही ख़ैरातखाने का दरवाज़ा खोल रखा है और जो भी आता है, उसके साथ बड़ी उदारता का व्यवहार करते हैं।"

हज़रत उमर बोले, "तुम जो दान करते हो, वह निष्काम भावना से नहीं करते। तुम चाहते हो कि बड़ाई मिले, इज्जत मिले। जो आदमी दिखावे के लिए दान देता है, उसके दान की कोई क़ीमत नहीं।" □

एक डाकू था। वह जंगल में छिपा रहता था और उधर से जो भी निकलता था, उसको लूटकर अपनी गुज़र-बसर करता था।

एक दिन नारद उधर से निकले। डाकू उनपर हमला करने को आया। नारद ने उसे देखकर अपनी वीणा पर गाना आरम्भ कर दिया। डाकू चकित होकर आगे बढ़ा। जब नारद के पास पहुँचा तो नारद उसे देखकर हँस पड़े। डाकू को अब और भी आश्चर्य हुआ। अबतक उसने ऐसा कोई आदमी नहीं देखा था। उसके हमला करते ही लोग भागने की कोशिश करते थे, या उसके सामने सिर झुका देते थे। लेकिन यह आदमी न तो भाग रहा था, न सिर झुका रहा था।

उसे विस्मित देखकर नारद ने पूछा, "क्यों, क्या चाहते हो ?"

डाकू ने कहा, "तुम्हें लूटना चाहता हूँ। यही मेरा धन्धा है।"

नारद बोले, "अच्छा, यह बताओ कि तुम अपनी स्त्री से पूछकर आये हो कि वह तुम्हारे इस पाप में भागीदार है या नहीं ?"

डाकू ने कहा, "भागीदार होगी क्यों नहीं ?"

नारद बोले, "मैं यहीं रुका हूँ। तुम जाकर एक बार पूछ तो आओ।"

डाकू ने उनकी बात मान ली। वह दौड़ा-दौड़ा घर गया। पत्नी से पूछा, "मैं जो पाप करता हूँ, उसमें तुम भी तो हिस्सेदार हो ?"

स्त्री ने कहा, "नहीं, तुम जो लूटकर माल लाते हो, उससे

मैं तुम्हारी घर-गिरस्ती चला देती हूँ। पाप से मेरा क्या सम्बन्ध है?"

डाकू की आँखें खुल गईं। लूट के माल में सबका साझा था, पर पाप में वह अकेला था।

वह लौटकर आया और उसने नारद के पैर पकड़ लिये। रोने लगा। बोला, "मैं पापी हूँ। मेरा उद्धार करो।"

नारद ने कहा, "तुमने अपनी भूल को समझ लिया, तुम्हारा नया जन्म हो गया। तुम्हारे सारे पाप दूर हो गये।"

उस दिन से डाकू ने लूटने का बुरा काम छोड़ दिया और मेहनत करके अपनी जीविका चलाने लगा।

यही डाकू आगे चलकर वाल्मीकि बने, जिसकी रामायण ने भारत को ही नहीं, सारी दुनिया को प्रभावित किया। □

१२४ / अभिमान अच्छा नहीं

एक व्याकरण का पण्डित नाव में बैठा था। उसने मल्लाह से व्याकरण की बड़ी प्रशंसा की और फिर उससे पूछा, "क्यों, भाई, क्या तुमने व्याकरण पढ़ा है?"

बेचारा मल्लाह व्याकरण क्या जाने! उसके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर था। उसने कहा, "पण्डितजी, हम नहीं जानते कि व्याकरण क्या होता है।"

व्याकरण के पण्डित ने कहा, "मुझे बड़ा अफसोस है कि तुमने अपनी अबतक की उम्र योंही गँवा दी।"

मल्लाह को यह सुनकर बड़ा बुरा लगा; लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

संयोग की बात कि उसी समय बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया। नाव ऊपर-नीचे होने लगी। मल्लाह ने पण्डितजी से पूछा, "पण्डितजी महाराज, यह तो बताइये कि आपको तैरना आता है या नहीं ?"

उन्होंने कहा, "नहीं, तैरना तो मुझे नहीं आता।"

मल्लाह ने कहा, "महाराज, तब तो आपकी सारी ज़िन्दगी ही बर्बाद हो गई; क्योंकि नाव भँवर में पड़ गई है और डूबने वाली है।"

अपनी कला पर किसी को अभिमान नहीं करना चाहिए। □

१२५ / बेजोड़ हौसला

बात उस समय की है, जब भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था। एक बालक था। उसके अन्दर देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। वह उन लोगों की बराबर मदद करता था, जो आज़ादी के दीवाने थे और ग़ुलामी की ज़ंजीरें तोड़ने के लिए जी-जान से जुटे थे।

उसकी माँ ने अपने बेटे को देश-भक्ति के रंग में रँगे देखा तो उसे बड़ी खुशी हुई, साथ ही उसके मन में यह डर भी हुआ कि कहीं वह पुलिस के हाथ में पड़ जाने पर घबरा न जाय, और उन लोगों के नाम-पते न बता दे, जो छिपकर काम कर रहे थे।

एक दिन माँ ने लड़के को अपना डर बताया तो उसने बड़ी दृढ़ता से कहा, "माँ, तुम बेफ़िक्र रहो। मैं घबराऊँगा नहीं।"

बालक फिर भी बालक था। माँ को उसकी बात पर विश्वास

नहीं हुआ। बोली, "मैं तेरा इम्तहान लूंगी।"

इसके बाद माँ ने दीया जलाया और कहा, "इस पर अपनी उँगली रख दे।"

लड़का एक क्षण को भी नहीं झिझका। उसने फ़ौरन अपनी उँगली बत्ती की लौ के ऊपर कर दी। उँगली जलती रही, पर लड़के के मुंह से उफ़ तक न निकली। वह बराबर मुस्कराता रहा।

बालक का हौसला देखकर माँ का जी भर आया। उसने उसे सीने से लगा लिया और दिल खोलकर आशीर्वाद दिया। लड़का अपने काम में दूने उत्साह से जुट गया।

यही लड़का अशफ़ाकुल्ला आगे चलकर भारत का महान् क्रान्तिकारी बना। हँसते हुए वह गाता था :

"हे मातृभूमि, तेरी सेवा किया करूँगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म-क़ैद मेरी,
बंशी बजा-बजाकर तेरा भजन करूँगा।"

जब काकोरी षड्यन्त्र के अपराध में अशफ़ाकुल्ला को फाँसी की सजा मिली और उसके गले में रस्सी का फन्दा डाला गया तब वह ऐसे प्रसन्न थे, मानो उनके जीवन की सबसे बड़ी इच्छा पूरी हो गई हो। □

१२६ / धर्म की बुनियाद

एक बार ख़लीफ़ा उमर भाषण दे रहे थे। उन्होंने लोगों से पूछा, "अगर मैं आप लोगों को कोई हुक्म दूं,तो क्या आप सब उस हुक्म को मानेंगे ?"

"जी नहीं," एक औरत बोल उठीं, "हम कैसे मान सकते हैं?"

हजरत उमर ने पूछा, "क्यों ?"

औरत बोली, "आप इतना लम्बा चोगा पहने हुए हैं, लेकिन मेरे पति का चोगा घुटनों तक भी नहीं आता। इससे साफ जाहिर है कि आपने शाही भण्डार से अपने हिस्से से ज्यादा कपड़ा लिया है।"

औरत की यह बात सुनकर उमर ने कहा, "मैं नहीं जानता कि यह कैसे हुआ है ? मेरा लड़का इसका जवाब देगा।"

खलीफा के इशारे पर लड़का आगे आया। बोला, "मेरे पिता ने कपड़ा ज्यादा नहीं लिया। मैंने अपने हिस्से का उन्हें दे दिया है। तभी उनका चोगा इतना लम्बा हो सका है।"

लोगों का सिर खलीफा के आगे श्रद्धा से झुक गया। पर वह औरत डर के मारे काँपने लगी कि पता नहीं, खलीफा आगे उसे क्या सजा देगा।

लेकिन खलीफा उस पर जरा भी नाराज न हुआ, उल्टे बोला, "जबतक इस औरत की तरह ईमानदार और निडर होकर अपने दिल की बात कहने वाले लोग मौजूद हैं, तबतक हमारे मजहब को कोई खतरा नहीं है।" □

१२७ / सबसे बड़ी कला

एक लड़का था। वह बड़ा होशियार था। वह नयी-नयी बातें सीखना चाहता था। उसने एक तीर बनानेवाले से तीर बनाना सीखा, नाव बनानेवाले से नाव बनानी सीखी, घर बनानेवाले से

घर बनाना सीखा। इस तरह एक के बाद एक वह बहुत-सी कलाएँ सीख गया। वह अभिमान से कहता, "मेरे बराबर दुनिया में कोई गुणवान् नहीं है।"

भगवान् बुद्ध ने देखा तो सोचा, उसे एक ऐसी कला सिखानी चाहिए, जो अबतक की सीखी कलाओं से बड़ी हो।

वह भिक्षा का पात्र लेकर उस लड़के के पास गये। लड़के ने उन्हें देखकर पूछा, "आप कौन हैं ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं अपने शरीर को काबू में रखने वाला एक आदमी हूँ।"

लड़का उनकी बात समझा नहीं। बोला, "आपका मतलब ?"

बुद्ध ने कहा, "देखो, जो तीर चलाना जानता है, वह तीर चलाता है; जो नाव चलाना जानता है, वह नाव चलाता है; जो घर बनाना जानता है, वह घर बनाता है। लेकिन जो ज्ञानी है, वह अपने ऊपर शासन करता है।"

लड़के ने पूछा, "सो कैसे ?"

बुद्ध ने जवाब दिया, "अगर कोई उसकी प्रशंसा करता है तो उसका मन चंचल नहीं होता, अगर कोई उसकी निन्दा करता है तो भी वह शान्त रहता है। ऐसा आदमी हमेशा आनन्द में रहता है।"

लड़का समझ गया कि सबसे बड़ी कला अपने को वश में रखना है। □

एक साधु थे। जंगल में उनकी कुटिया थी। वह धूनी रमाये उस कुटिया में बैठे रहते। उनके कुछ शिष्य थे। एक दिन उन्होंने शिष्यों से कहा, "जाओ, तुम लोग दुनिया में घूमकर ज्ञान प्राप्त कर आओ।"

शिष्य चले गये। कुछ समय के बाद वे एक-एक करके लौट आये। उन्होंने अपने-अपने अनुभव गुरुजी को सुनाये। एक शिष्य रह गया। जब वह बाद में लौटा तो साधु ने पूछा, "तुम क्या सीखकर आये हो?"

उसने कहा, "मैंने तो कुछ भी नहीं सीखा।"

साधु को बड़ा बुरा लगा कि उसने इतना समय बेकार खोया।

एक दिन वह युवक साधु की पीठ की मालिश कर रहा था। मालिश करते-करते वह बोला, "मन्दिर तो अच्छा है, पर भीतर भगवान् की मूर्ति नहीं है।"

साधु समझ गए कि यह उन्हीं के लिए कहा गया है। उन्हें बड़ा गुस्सा आया। उनका चेहरा तमतमा उठा, पर शिष्य चुप्रचाप अपना काम करता रहा।

एक दिन शहद की एक मक्खी साधु की कुटिया में घुस आयी। वह बाहर जाना चाहती थी, पर दरवाज़ा खुला होने पर भी वह दीवारों से टकराती थी। शिष्य ने यह देखकर कहा, "मूर्ख, उधर जा, जिधर से तू आयी है। द्वार वहीं है।"

साधु ने यह सुनने पर उसकी आँखें खुल गईं। अब उन्होंने समझा कि उसका शिष्य बाहर से कोरा सीखकर नहीं आया था, 'गुन' कर आया था। □

एक बार एक नौजवान ईसा के पास आया। बोला, "मैं अमर जीवन प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे क्या करना चाहिए ?"

ईसा ने कहा, "परमात्मा ने जो रास्ता बताया है, उस पर चलो।"

युवक ने पूछा, "वह कौन-सा रास्ता है ?"

ईसा ने जवाब दिया, "हत्या न करो, व्यभिचार न करो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, किसी का जी न दुखाओ और माता-पिता का आदर करो।"

नौजवान ने खुश होकर कहा, "ऐसा तो मैं बचपन से ही करता आ रहा हूँ।"

ईसा ने देखा, वह भला आदमी था। उन्होंने कहा, "एक चीज़ और रह गई है।"

"वह क्या ?" नौजवान ने उत्सुकता से पूछा।

ईसा ने कहा, "जाओ, अपनी सारी सम्पत्ति बेच दो। जो पैसे मिलें, उन्हें ग़रीबों में बाँट दो।"

नौजवान बड़ा अमीर था। उसके पास लाखों-करोड़ों की धन-सम्पत्ति थी। ईसा की बात सुनकर वह स्तब्ध रह गया। यह काम सबसे कठिन था। युवक ने लाचारी से ईसा की ओर देखा। ईसा मुस्कराये। बोले, "कोई भी आदमी एक समय में परमात्मा और दौलत, इन दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता। तुम्हें परमात्मा के रास्ते पर चलने के लिए तो दूसरा रास्ता छोड़ना ही होगा।"

पता नहीं नौजवान ने अपनी सम्पत्ति बेची या नहीं, लेकिन उसने समझ लिया कि जीवन में सबसे कठिन काम है अपनी इच्छा से अकिंचन बनना। □

१३० / महात्मा का चमत्कार

किसी नगर में एक दुकानदार था। कपड़े की उसकी दुकान थी। वह बड़ा ही ईमानदार था और अपने ग्राहकों के साथ उसका व्यवहार बड़ा अच्छा रहता था। दूकान खूब चलती थी।

अचानक दुकानदार के सामने एक कठिनाई आ गयी। उसका छोटा लड़का उसके साथ दूकान पर बैठता था। जाने कहाँ से उसको आदत पड़ गयी कि दूकान पर जो भी ख़रीदार आता, वह उसकी टोपी या पगड़ी उतारकर फेंक देता। दुकानदार ने उसे बहुतेरा समझाया, डराया-धमकाया, मारा-पीटा, लेकिन उसने अपनी आदत न छोड़ी। धीरे-धीरे लोगों ने उसकी दूकान पर आना कम कर दिया।

दुकानदार बहुत ही हैरान हो गया। वह क्या करे? लड़के की माँ गुज़र चुकी थी, इसलिए घर पर अकेले उसे छोड़ भी नहीं सकता था।

संयोग से एक दिन एक महात्मा उसे मिले। उसने अपनी परेशानी उन्हें बतायी, "महात्माजी, आप जैसे बने, इस लड़के को ठीक कर दीजिए। मैं आपका बड़ा अहसान मानूंगा।"

महात्मा ने सारी बात सुनकर कहा, "मैं तुम्हारे लड़के को ठीक तो कर दूंगा, लेकिन एक शर्त है।"

दुकानदार ने पूछा, "क्या ?"

वे बोले, "मैं या तुम्हारा बालक जो करे, उसमें रोक-टोक नहीं करोगे।"

दुकानदार राज़ी हो गया।

अगले दिन महात्मा अपने सिर पर साफा बाँधकर उसकी दूकान पर आये। लड़का तो ताक में था ही, जैसे ही महात्मा बैठे कि वह उठा और उनका साफ़ा उतारकर सड़क पर फेंक दिया।

महात्मा ने हँसकर कहा, "शाबास बेटे !" उन्होंने उसे पुचकारा और कहा, "जरा दौड़कर साफ़े को उठा तो लाना।"

लड़के ने छलाँग लगाई और साफ़ा उठाकर ले आया।

महात्मा ने कहा, "मेरे सिर पर इसे बाँध दो।"

लड़के ने उसे उल्टा-सीधा उनके सिर पर लपेट दिया।

दूसरे दिन महात्मा फिर उसकी दूकान पर आये। उनके सिर पर साफ़ा था। पर वे दूकान के सामने एक लकड़ी का बोटा और छोटी कुल्हाड़ी डाल आये थे। दूकान पर आते ही उन्होंने लड़के को अपने पास बुलाया और कहा, "बेटा, उस कुल्हाड़ी को उठाकर जरा लकड़ी के टुकड़े कर देना।"

दुकानदार ने सुना तो बड़ा घबराया। कहने को हुआ कि महाराज, आप यह क्या करवा रहे हैं ? लड़का अपना पैर काट लेगा, पर कुछ न बोलने का वचन जो दे चुका था।

लड़के ने कूदकर कुल्हाड़ी उठा ली और लकड़ी को काटने लगा। वह थोड़ी देर में थककर लौट आया और महात्मा के पास बैठ गया।

महात्मा ने सात दिन तक उससे कुछ-न-कुछ कराया। उसके बाद बच्चे की साफा उतारने की आदत एकदम छूट गयी।

दुकानदार चकित रह गया। उसने महात्मा से कहा, "आपने यह क्या चमत्कार कर दिया ?"

महात्मा बोले, "हमलोग दिन-भर में बच्चे से बीसियों बार कहते हैं—यह मत कर, वह मत कर, लेकिन एक बार भी यह नहीं कहते कि यह कर। बालक कुछ करना चाहता है। तुमने देखा, जब-जब मैंने तुम्हारे लड़के से कुछ करने को कहा, उसने कितने आनन्द से उस काम को किया।"

दुकानदार ने अपनी भूल समझी और उस दिन से उसका खोया बालक उसे मिल गया। □

१३१ / कषायों का बोझ

एक आदमी था। वह एक महात्मा के पास गया और बोला, "महाराज, मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूँ, करा दीजिये।"

महात्मा ने कहा, "अच्छा, कल सवेरे आना।"

अगले दिन वह आदमी महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने उसे पाँच-पाँच सेर के पाँच पत्थर दिये और कहा, "इन्हें एक गठरी में बाँधकर सिर पर रखो और सामनें के पहाड़ की चोटी पर चलो।"

आदमी ने पत्थर उठा लिये और चढ़ाई शुरू कर दी। कुछ ही कदम चलने पर वह थक गया। बोला, "महाराज, अब नहीं चढ़ा जाता।"

महात्मा ने कहा, "अच्छा, एक पत्थर फेंक दो।"

आदमी ने गठरी खोलकर एक पत्थर फेंक दिया। बोझ थोड़ा हल्का हो गया, पर कुछ कदम बढ़ते ही वह फिर हैरान हो गया। महात्मा से कहा तो उसने एक पत्थर और फिकवा दिया। इसके बाद तीसरा, फिर चौथा, फिर पाँचवाँ पत्थर फिक गया और वह पहाड़ की चोटी पर पहुँच गया।

चोटी पर खड़े होकर उस आदमी ने कहा, "महाराज, हम ऊपर आ गये, अब ईश्वर के दर्शन कराइये।"

महात्मा ने कहा, "भले आदमी! पाँच-पाँच सेर के पाँच पत्थर सिर पर रखकर तुम पहाड़ पर नहीं चढ़ सके, और काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का मनों बोझ लेकर ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो!" □

एक सन्त स्वर्ग में गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि दूसरे सन्तों को जो मुकुट पहनने को मिले, उनमें हीरे-जवाहरात जड़े हुए थे, लेकिन उन्हें जो मुकुट मिला, वह केवल सोने का था, उसमें हीरे-जवाहरात नहीं थे।

सन्त को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने देवदूत से पूछा, "मेरे साथ ऐसा भेदभाव क्यों किया गया?"

देवदूत ने उत्तर दिया, "तुमने हीरे-जवाहरात दिये कहाँ थे, जो यहाँ मिलते !"

सन्त की समझ में देवदूत की यह बात न आयी। उसने पूछा, "क्या दूसरे सन्तों ने हीरे-जवाहरात दिये थे ?"

देवदूत बोला, "हाँ, दिये थे। अरे, ये हीरे-जवाहरात वे आँसू हैं, जो मर्त्यलोक में बहाये थे। तुमने तो एक आँसू भी अपनी आँखों से नहीं गिराया !"

सन्त ने कहा, "कैसे गिराता ! मैं भगवान् का प्रेम पाकर बहुत सुखी जो था।"

देवदूत ने कहा, "तुम्हारी बात सही है। तुम्हें भगवान् का प्रेम मिला, इसी से यहाँ तुमको सोने का मुकुट मिला है। लेकिन हीरे-जवाहरात तो उन्हीं के लिए हैं, जिनके नेत्रों से दूसरे के दुःख पर आँसू बहते हैं।"

सन्त ने देवदूत की बात के मर्म को समझा। वह सचमुच अपने में मस्त रहा था, दीन-दुखियों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया था। □

१३३ / शुद्ध हृदय की प्रार्थना

समर्थ रामदास ऊँचे दर्जे के सन्त हुए हैं। वह भिक्षा माँगकर अपना पेट भर लेते थे और भगवान् की भक्ति में लीन रहते थे।

एक दिन वह भिक्षा माँगते हुए एक घर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने जैसे ही आवाज लगाई कि घर की स्त्री का पारा चढ़ गया। वह चौका लीप रही थी। आवाज सुनते ही पोतना लेकर बाहर आयी और स्वामीजी पर फेंककर बोली, "ले, इसे ले जा।"

स्वामीजी इस पर जरा भी दु:खी नहीं हुए। पोतना लेकर वह नदी पर गये। वहाँ जाकर अपना बदन धोया और पोतना साफ किया। रात को उसी पोतने में से एक टुक । फाड़कर बत्ती बनाई और घी में भिगोकर दीपक जलाकर भगवान् की आरती की, फिर प्रार्थना की, "हे प्रभो! इस दीपक के प्रकाश से जैसे यहाँ का अन्धकार दूर हो गया है, वैसे ही इस वस्त्र को देने वाली माता के हृदय का अन्धकार भी दूर हो।"

अगले दिन देखते क्या हैं कि वह स्त्री उनके आश्रम में आयी और अपने किये पर पछतावा करने लगी।

शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। □

१३४ / मौत का डर

एक आदमी था। वह एक दिन पहाड़ी इलाके में कहीं जा रहा था। अचानक एक चट्टान पर से उसका पैर फिसल गया और वह खड्ड में गिर पड़ा। रात इतनी अन्धेरी थी कि कुछ भी दिखाई नहीं देता था। आदमी के हाथ में एक झाड़ी आ गई। उसी

को पकड़कर वह लटक गया। उसने पैरों से यह अन्दाज़ लगाने की कोशिश की कि अभी खड्ड कितना और गहरा है। पर उसके पैर ज़मीन को नहीं छू सके।

वह काँप उठा। सोचा, ज़रूर खड्ड बहुत गहरा है। झाड़ी उसके हाथ न पड़ी होती तो वह मौत की गोद में चला गया होता।

मारे सर्दी के बुरा हाल हो रहा था उसका। शरीर थर-थर काँप रहा था। थोड़ी देर में उसके हाथ इतने ठिठुर गये कि झाड़ी पकड़े रखना मुश्किल हो गया। उसकी उँगलियाँ बेकार हो गईं। झाड़ी छूट गई।

उसके प्राण मुँह को आ गये। उसकी आँखें मुंद गईं।

तभी उसने पाया कि वह ज़मीन पर खड़ा है। जिसे भयंकर खड्ड समझकर वह बेहाल हो रहा था, वह ज्यादा गहरा नहीं था। ज़मीन बिल्कुल पैरों के पास थी।

किसी ने ठीक ही कहा है, मौत से जितने आदमी मरते हैं, उससे ज़्यादा मौत के डर से मरते हैं। □

१३५ / नयी दिशा

एक साधु थे। वह अपने आश्रम में रहते थे। उनका एक शिष्य था। वह आश्रम के ही एक कोने में अपनी कुटिया में रहता था। एक दिन गुरु ने कहा, "मन बड़ा चंचल है।" उसी दिन से शिष्य अपनी कुटिया में बन्द रहता और अपने मन को काबू में करने का रात-दिन प्रयत्न करता। उस आश्रम में कौन आता है, कौन जाता है—इसकी ओर वह ध्यान भी न देता।

एक दिन गुरु उसकी कुटिया में आये और एक ईंट लेकर

थर पर घिसने लगे। बहुत देर हो जाने पर शिष्य ने उठकर उनकी ओर देखा। पूछा, "गुरुदेव, यह आप क्या कर रहे हैं ?"

गुरु ने कहा, "इस ईंट का आईना बनाऊँगा।"

शिष्य बोला, "ईंट से कहीं आईना बनता है। आप जीवन-भर इसे घिसते रहेंगे तब भी आईना नहीं बनेगा।"

गुरु ने हँसकर कहा, "अच्छा! अगर ईंट का आईना नहीं बन सकता तो मन का भी आईना नहीं बन सकता। मन तो धूल है, जो आत्मा के आईने पर पड़ी रहती है। उस धूल को छोड़ो, तब सचाई हाथ लगेगी।"

उस दिन से शिष्य की साधता दिशा वदल गई। □

१३६ / प्रतिज्ञा

किसी जहाज पर एक लड़का नौकरी करता था। वह खलासी का लड़का था। एक दिन जहाज का कप्तान उसके किसी काम से बड़ा खुश हो गया। उसने उसे बहुत बढ़िया शराब पीने को दी। लेकिन लड़के ने शराब पीने से इन्कार कर दिया। कप्तान को बड़ा नागवार गुजरा। उसने खीजकर कहा, "अगर तुम शराब नहीं पीओगे तो मैं तुम्हें मेरी बात न मानने के अपराध में कैदखाने में डाल दूंगा।"

लड़का बोला, "आप जो भी चाहें, कीजिये। मैं शराब नहीं पीऊँगा।"

कप्तान ने कठोर होकर कहा, "नहीं, तुमको पीनी पड़ेगी।"

लड़का रोने लगा। कप्तान ने कड़क कर पूछा, "आखिर बात क्या है ?"

लड़के ने सिसकते हुए कहा, "मुझे बड़ा दुःख है कि मैं आपकी आज्ञा नहीं मान रहा हूँ। असल में बात यह कि मेरे पिता बहुत शराब पीते थे। अपनी शराब की लत के कारण ही उनकी मृत्यु हो गई। इसलिए मेरी माँ ने मुझसे प्रण कराया कि मैं जीवन में कभी शराब नहीं पीऊँगा। मैं आपकी बात टाल सकता हूँ। लेकिन माँ से की गई प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकता।"

कप्तान ने लड़के को सीने से लगा लिया। बोला, "मेरी बात का बुरा मत मानना और अपनी टेक सदा निभाना।"□

१३७ / उपकार

एक स्त्री थी। उसकी आँखें चली गयीं। पहले एक गयी, फिर दूसरी। वह बहुत परेशान रहने लगी। पति अपनी अन्धी पत्नी का बोझ कबतक उठाता! वह उससे अलग रहने लगा। उसकी छोटी लड़की ने भी उससे मुंह मोड़ लिया।

स्त्री हर काम के लिए पराधीन थी, पर उसे कौन सहारा देता! ऐसी हालत में उसकी एक पुरानी सहेली उसके पास आकर रहने लगी। लेकिन उसका व्यवहार बड़ा अजीब था। वह स्त्री पानी माँगती, तो एक बार पिला देती। दूसरी बार मांगने पर कह देती, "मैं तुम्हारी नौकर नहीं हूँ। उठो, घड़े से लेकर अपने आप पी लो।" वह कपड़े माँगती तो एक बार दे देती, दूसरी बार माँगने पर कह देती, "अलमारी में रखे हैं। जाओ, अपने आप ले लो।" कभी उसका मन घूमने का होने पर एक बार साथ चली जाती। दूसरी बार जाने की बात आती तो कह देती, "मुझे काम है। तुम अकेली घूम आओ।"

स्त्री मन मसोसकर उठती और काम करती। असल में बात यह थी कि सहेली उसे कम प्यार नहीं करती थी, न काम से बचना चाहती थी। वह बार-बार दया दिखाकर उसको सदा के लिए अपाहिज नहीं बनाना चाहती थी। उसमें आत्मविश्वास पैदा कर देना चाहती थी।

धीरे-धीरे वह स्त्री सब काम अपने-आप करने लगी। उसे किसी के सहारे की जरूरत न रही। तब उसने समझा कि उसकी सहेली ने उसके साथ कितना उपकार किया।

वह अन्धों की एक संस्था में चली गई और वहाँ उसने जाने कितने असहाय भाई-बहनों को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। □

'मण्डल' द्वारा प्रकाशित
लेखक की प्रमुख पुस्तकें

- दिव्य जीवन की झाँकियां
- आधुनिक भारत की विभूतियाँ
- जीवन ज्योति
- अमृत घट
- चट्टान नहीं पिघलती
- सागर के आर-पार
- मानवता के रजतकण
- मोर की आहट
- राजकुमार की प्रतिज्ञा
- सेवा करे सो मेवा पावे
- अमर कथाएँ
- आदर्श कथाएँ
- ज्ञान कथाएँ
- नैतिक कथाएँ

सस्ता साहित्य मण्डल
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन